ऋग्वेद यजुर्वेद

मानव संस्कार ग्रन्थमाला – दसवाँ पुष्प

वेदों में बताये गये
उपदेशों व आज्ञाओं पर चल कर ही
मानव जीवन को सफल
बनाया जा सकता है।

सामवेद आध्यात्मिक उपदेश

पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार के सामवेदभाष्यम्
से संकलित 150 आध्यात्मिक उपदेश

संकलनकर्ता एवं प्रकाशक
मदन अनेजा
मो. 9873029000

सामवेद अथर्ववेद

A word about

MANAV SANSKAR FOUNDATION

4A, 3rd floor, Street No. 12, New Gobind Pura, Delhi-110051

Dear Readers,

"Manav Sanskar Foundation" is a public charitable trust. It was set up on 4th December 2012 and registered with the Government of National Capital Territory of Delhi on 10th December 2012, wholly for charitable purposes. Its main objects are as under :-

(i) to work for educational and spiritual upliftment of the common man ;

(ii) to publish books and other material on educational, social and spiritual subjects including Vedas & Upanishads ;

(iii) to publish, run, support and grant financial assistance to the Gurukuls and children of under priviledged persons of society;

(iv) To establish and maintain old age homes;

(v) To open and establish charitable dispensaries and;

(vi) To open free legal aid and advice centres for the poor and the helpless people, particularly women. The Trust, in addition to the present book has published, so far several pamphlets, leaflets and books and distributed them free of cost for spiritual upliftment of the general public irrespective of caste, sex, creed or religion besides providing free legal advice to the needy.

(vii) The Trust is also distributing its books free of cost throughout India on payment of postel and packing charges only. However, no postal charge is taken from Arya Samaj Mandirs/Gurukuls/ Educational Institutions.

The trust shall appreciate your participation in the donations out of your hard-earned and sacred earnings for the social and noble cause. The Trust accepts only cheque/draft in the Foundation Account as under :-

Current Acccount No. : 0646002104049820

Punjab National Bank (RTGS/NEFT IFS Code :- PUNB0064600)

F-2/3, Krishna Nagar, Delhi-110051

Paytm No. 9873029000

Our website : www.manavsanskar.com

Our e-mail : manavsanskar.mla@gmail.com

(M.L. Aneja)
President
Manav Sanskar Foundation

The Author is a Joint Registrar (Retired), Supreme Court of India and Former Advisor (Law), National Human Rights Commission, New Delhi

मानव संस्कार ग्रन्थमाला – दसवाँ पुष्प

वेदों में बताये गये
उपदेशों व आज्ञाओं पर चल कर ही
मानव जीवन को सफल
बनाया जा सकता है।

सामवेद आध्यात्मिक उपदेश

पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार के सामवेदभाष्यम्
से संकलित 150 आध्यात्मिक उपदेश

संकलनकर्ता एवं प्रकाशक
मदन अनेजा
मो. 9873029000

प्रेरणा स्रोत

(15.06.1955– 27.04.2023)

श्रीमती स्वराज अनेजा

पत्नी श्री मदन अनेजा

भूमिका

वर्तमान काल में मानव, ऋषियों के यथार्थ ज्ञान से अनभिज्ञ होकर, भौतिकवाद और पाश्चात्य संस्कृति का पोषक और समर्थक बन गया है। अधिकतर मनुष्य संस्कृत भाषा के ज्ञान के अभाव और भोगवाद में लिप्त होने के कारण वेद और आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं कर पा रहे हैं। इस कारण अनैतिकता, भ्रष्टाचार व अनाचार सब तरफ दिखाई दे रहा है। मनुष्य आध्यात्मिक शोषण, अन्धकार, अन्धविश्वास, दुराचार, दुर्व्यवहार का शिकार आज भी हो रहा है। इस कठिनाई, समस्या व स्थिति का समाधान करना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है।

उपरोक्त परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक ''**सामवेद आध्यात्मिक उपदेश**'' में 150 आध्यात्मिक उपदेशों का संकलन वेदों के प्रख्यात दार्शनिक एवं विचारक पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार द्वारा लिखित ''सामवेदभाष्यम्'' से समाजहित में किया गया है।

आध्यात्मिक उपदेशों का प्रतिदिन स्वाध्याय, चिंतन व पालन करने से मुख्यत: निम्न लाभ हैं :-

1. ये उपदेश मनुष्य में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करते हैं और उसे पतन की ओर अग्रसर होने से रोकते हैं।
2. मानव को सृष्टिकर्ता व सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता का अनुभव कराते हैं।
3. व्यक्ति को परिपूर्ण, पवित्र एवं साहसी बनाते हैं।
4. मनुष्य को वैदिक ज्ञान से परिचित कराते हैं।
5. मनुष्य को अपनी इन्द्रियाँ वश में करने हेतु सहायता करते हैं

तांकि व्यक्ति इसी जन्म में ईश्वर की अनुभूति कर सके।

6. सब क्लेशों (कष्टों) का मूल अविद्या है। क्लेशों से ऊपर उठने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। प्रभु ने इस प्रकाश को उपदेशों के रूप में वेदवाणी में रखा है।
7. ये उपदेश भक्ति भावना को हृदय में निष्ठा एवं श्रद्धा जाग्रत करते हैं।
8. मनुष्य का दृष्टिकोण विशाल बनाते हैं और आदर्श जीवन जीने में सहायता करते हैं।
9. ये उपदेश आत्मसंतुष्टि प्रदान करने में सहायक हैं। हमें प्रभु का ज्ञान कराते हैं।
10. ये उपदेश जीवन में आई चुनौतियों का मुकाबला करने व स्वयं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में केवल आध्यात्मिक उपदेशों का ही संकलन किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि ये आध्यात्मिक उपदेश साधकों की, वेदों के प्रति रूचि उत्पन्न करेंगे और वे वैदिक धर्म को अपनाकर अपना व अन्यों के आध्यात्मिक जीवन को उन्नत व निष्पाप बनायेंगे।

पं. हरिशरण जी का भाष्य अति उत्तम है, सरल है। अतः आप से निवेदन है कि इन उपदेशों को विस्तार से समझने के लिए पं. हरिशरण जी के भाष्य का स्वाध्याय अवश्य करें।

नोट :- पुस्तक में दी गई मन्त्र से पूर्व संख्या इस पुस्तक की है और अन्तवाली संख्या सामवेदभाष्यम् की है।

मदन अनेजा

आध्यात्मिक उपदेश

1. **त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।**
   देवेभिर्मानुषे जने।। साम0 2

उपदेश : संसार में सब उत्तम कर्म प्रभु की शक्ति से प्राप्त होते हैं। सर्वव्यापक होते हुए भी प्रभु का निवासस्थान मानवता से युक्त मनुष्य ही है। हम अपने अन्दर दिव्य गुणों की वृद्धि करके ही उस प्रभु का साक्षात्कार कर सकते हैं।

2. **अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।**
   अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।। साम0 3

उपदेश : जीव के सामने दो रास्ते हैं–'प्रकृति को वर ले या प्रभु को'। प्रकृति 'प्रेय मार्ग' का प्रतीक है, प्रभु 'श्रेय मार्ग' का। प्रभु अपने भक्तों को तपस्या की अग्नि में तपाकर सोना बनाना चाहते हैं। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर सब सम्पत्तियों के देने वाले वही हैं। प्रकृति भी तो प्रभु की ही है। प्रभु के मिलने पर प्रकृति तो मिल ही जाती है। अतः प्रभु का वरण ही ठीक है।

मन्दमति 'प्रेय–मार्ग' का ही वरण करता है, उसकी हरियाबल उसे मनोहर प्रतीत होती है, उसकी मधुरता से वह छला जाता है और प्रभु को प्राप्त नहीं कर पाता है।

3. **अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।**
   समिद्धः शुक्र आहुतः।। साम0 4

उपदेश : मनुष्य की यह विवशता है कि वह चाहता हुआ भी काम–क्रोधादि वासनाओं को विनिष्ट नहीं कर पाता। ये प्रबल वासनायें मनुष्य की समझ पर पर्दा डाले रहती हैं। परमेश्वर का स्मरण ही वासनाओं के संहार करने का एक मात्र उपाय है।

यदि मनुष्य अपने पास धन का संचय किये रखे और यह

चाहे कि प्रभु उसकी वासनाओं को विनष्ट कर दें तो यह संभव नहीं है। प्रभु और धन -दोनों की उपासना युगपत सम्भव नहीं है। अतः हम धन उस प्रभु को अर्पित कर दें और तब हमारी इस विशिष्ट स्तुति से वे प्रभु हमारी वासनाओं का संहार करेंगे।

4. त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः।
उत द्विषो मर्त्यस्य।। साम0 6

उपदेश : मनुष्य के सामाजिक जीवन में दो बड़े दोष आ जाते हैं-एक 'अदान' की भावना और दूसरा 'द्वेष'। सारी सामाजिक उन्नति दान की वृत्ति पर ही निर्भर है। यदि मनुष्य में देने की वृत्ति न हो तो किसी भी सामाजिक कार्य का होना संभव न हो।

जिस प्रकार अदान की वृत्ति समाज के लिए घातक है, उसी प्रकार द्वेष की। द्वेष में मनुष्य की शक्ति अपने उत्थान में न लगकर दूसरे के पतन में लगती है। द्वेष में हम दूसरे से प्रीति न कर, वैर ठान लेते हैं। हम तेजस्वी वन कर अदान व द्वेष से दूर रहें। तभी समाज व राष्ट्र को स्वर्ग वना सकते हैं।

5. एह्यू षु व्रवाणि तेऽ ग्र इत्थेतरा गिरः।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः।। साम0 7

उपदेश : उपासना से मनुष्य का व्यवहार सत्यमय होता है और उपासक में परमेश्वर की महिमा प्रकट होती है।

प्रभु के सन्निकर्ष से मानव-जीवन में बहुत बड़ी क्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। वह सदा सत्य का पालन करता है। उसका व्यवहार शुद्ध होता है। उसे किसी भी बात का भय सत्य के मार्ग से विचलित नहीं कर पाता और लोभ उसे आकृष्ट नहीं कर सकता। प्रभु के उपासकों की दृढ़ता लोगों के आश्चर्य का कारण बनती है। इनके जीवन में उन्हें कोई महान शक्ति कार्य करती हुई

दृष्टिगोचर होती है।

6. **अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।**
सम्राजन्तमध्वराणाम्।। साम0 7

उपदेश : परमेश्वर रक्षक न हो तो मनुष्य किसी भी कार्य को सफलता से सम्पन्न नहीं कर सकता। अतः कभी भी 'सफलता' का गर्व नहीं करना चाहिए।

7. **अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद्विश्वं न्या३त्रिणम्।**
अग्निर्नो वंसते रयिम्।। साम0 22

उपदेश : अपनी पत्नि, भोजन और धन–इन तीन में सन्तोष होना चाहिए, परन्तु दान, तप और पठन (ज्ञान–प्राप्ति) में सन्तोष नहीं होना चाहिए।

8. **अग्ने रक्षा णो अहसः प्रति स्म देव रीषतः।**
तपिष्ठैरजरो दह।। साम0 24

उपदेश : अध्यात्म उन्नति ही मुख्य उन्नति है। अधिक धन का उपार्जन करने लगना, ऊँचे पद पर पहुँचना या प्रधान बन जाना आदि बातों का कुछ महत्त्व नहीं, यदि हम अपने जीवन को निष्पाप नहीं बनाते। अतः उन्नति पाप से बचने का ही नाम है।

आइये ! हमारा जीवन दानमय, प्राणी–सेवा में लगा हुआ व सदा सबके लिए शुभ भावनावाला हो।

9. **उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।**
दृशे विश्वाय सूर्यम्।। साम0 31

उपदेश : परमेश्वर की सत्ता हमारे हृदयों में है, परन्तु ज्ञान के अभाव में उसकी सत्ता हमारे लिए न के ही समान है। विचारशील बनने पर ज्ञानी प्रभु को अपने अन्दर धारण करते हैं। प्रभु का दर्शन कर ये उस अद्भुत रस में ही निमग्न (मस्त) नहीं हो जाते, अपितु

संसार में भटकते हुए अन्य जीवों को भी वे उस प्रभु का दर्शन कराने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मानन्द की प्राप्ति करने के बाद भी वे स्वार्थी नहीं बनते।

10. देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्टासिचम्।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद् वो देव ओहते।।

साम0 55

उपदेश : प्रभु की प्राप्ति के लिए दो बातें आवश्यक हैं-(1) अपने हृदय को दया की भावना से इतना सींचो कि वह दया तुम्हारे हृदय से बाहर प्रभावित होने लगे अर्थात् हृदय का दया से पूर्ण होना और (2) दु:खियों के समीप पहुँचकर उनके जीवन को सुखी बनाना अर्थात् दु:खियों की सेवा करना। यह दोनों बातें तभी हो सकती हैं जब हम अपने मन व इन्द्रियों को वश में कर लें।

11. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु न।।

साम0 56

उपदेश : मानव-जीवन एक यज्ञ है। ''हमारा जीवन यज्ञमय बना रहे'' इसके लिए तीन बातें आवश्यक हैं-

(i) प्रात:-सायं उस प्रभु का चितन करें। इसके साथ-साथ सभी क्रियायों में उसका स्मरण करें।

(ii) जीवन में सत्य को धारण करें और

(iii) यज्ञीय प्रवृत्तिवाली सन्तान को प्राप्त करें, जिससे कि हमारा यह जीवन यज्ञमय बना रहे।

12. ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे।।

साम0 57

उपदेश : मानव जीवन के निर्माण में दो बातें आवश्यक है। एक बीज, दूसरी परिस्थिति। बीज हमें माता-पिता से प्राप्त होता है, परन्तु परिस्थिति का निर्माण हम स्वयं करते हैं। बीज की अपेक्षा परिस्थिति का जीवन निर्माण में तीन गुणा भाग है। अतः अपने भाग्य का निर्माण बहुत कुछ मनुष्य के अपने ही हाथ में है। Man is the architect of his own fate. उत्तम परिस्थिति हमें उत्तम बनायेगी, अधम (निम्न) परिस्थिति में हम अधम (नीच) बन जायेंगे।

13. आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम्।
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम्।।

साम0 63

उपदेश : जिस मनुष्य के अन्दर दान की वृत्ति जाग्रत हो जाती है, उसका अन्तःकरण पवित्र होता जाता है। दान वस्तुतः लोभ को नष्ट कर व्यसन-वृक्ष के मूल को ही समाप्त कर देता है।

जब प्रभु सब पदार्थों के देने वाले हैं, तब हमें प्रभु के दिये हुए पदार्थों को, प्रभु के प्राणियों को, देते हुए संकोच नहीं करना चाहिए।

14. इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व।
संवेशनस्तन्वे३ चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे।।

साम0 65

उपदेश : मनुष्य की तीन ज्योतियाँ हैं - पहली अच्छा स्वास्थ्य। यदि व्यक्ति स्वस्थ रहे तो उसके शरीर पर एक अद्भुत चमक होगी। दूसरी स्वस्थ मन। मन में किसी के प्रति द्वेष न होने, राग-द्वेष-मोहादि मलों से शून्य होकर मन के शुचि होने से जो मानस आनन्द प्राप्त होता है, वह एक अनुपम आनन्द है और

तीसरी बुद्धि का विकास। इन तीनों उन्नतियों का करना ही परम विकास है।

प्रभु की सच्ची स्तुति यही है कि हम स्वस्थ, द्वेष रहित व तीव्र बुद्धि वाले बनने का प्रयत्न करें। सदैव प्रभु के सम्पर्क में रहें।

15. मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानररमृत आ जातमग्निम्।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त देवः।।

साम0 67

उपदेश : उन्नत पुरुष ज्ञान के शिखर पर पहुँचता है, पार्थिव वस्तुओं में रुचि नहीं रखता, लोकहित का जीवन बिताता है, सदा सत्यवादी, प्रगतिशील, क्रान्तदर्शी, नियमित जीवन वाला होकर मनुष्यों के सम्पर्क में रहता हुआ, सदुपदेशों से उनका कल्याण करता है। संसार को माथा-पच्ची समझ हिमालय की कन्दराओं की ओर नहीं भाग जाता।

16. अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम्।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम्।। साम0 72

उपदेश : ज्ञान और भक्ति का उचित समन्वय होने पर ही मनुष्य प्रगति कर सकता है। केवल ज्ञान या केवल भक्ति मनुष्य के उत्थान के लिए उसी प्रकार असमर्थ है, जैसे केवल दायां या केवल बांया पंख पक्षी के उत्पतन (ऊपर उड़ना) के लिए। हृदय व मस्तिष्क दोनों का मेल ही मनुष्य को ऊँचा उठा सकता है।

17. प्र होता जातो महान्नभोवित्रृषद्मा सीददपां विवर्ते।
दधद्यौ धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः।।

साम0 77

उपदेश : प्रभु के दिये हुए शरीर का ठीक उपयोग करना प्रभु का आदर करना है। स्वादवश अनावश्यक भोजनों से शरीर को रोगी

बना लेना, प्रभु का निरादर है, क्योंकि हम प्रभु की दी हुई वस्तु का ठीक उपयोग नहीं कर रहे। यदि हम प्रभु द्वारा दिये गये शरीर का ठीक रक्षण व उपयोग करेंगे तो प्रभु के प्रिय होंगे।

18. प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते।।

साम0 85

उपदेश : प्रभु-उपासना के निम्न लाभ हैं :-

(i) हम आगे बढेंगे और धर्म के मार्ग पर हमारी प्रगति होगी।

(ii) प्रभु पालन करने वाला है। ऐसा अनुभव करने के कारण हमारा जीवन निर्भीक होगा, व्याकुलता से शून्य होगा।

(iii) हम अपने जीवन की न्यूनताओं को दूर कर प्रतिदिन जीवन का पूरण करने वाले होंगे और

(iv) हम एक तृप्ति का अनुभव करेंगे जो किन्हीं भी सांसारिक पदार्थों में नहीं मिल सकती।

19. प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽ ग्रये भरता बृहत्।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे।। साम0 98

उपदेश : जब मनुष्य प्रभु के गुणों का गान करता है, तब उन गुणों में प्रीति होकर वह अपने भक्तिभाजन के अनुरूप बनने का प्रयत्न करता है। यह प्रभु का स्मरण उसे अशुभ बातों की ओर जाने से बचाकर उसका पालन भी करता है। प्रभु के नाम का स्मरण वासना और अहंकार का भी विनाश करता है।

20. जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।
अयं ध्रुवो रणीयां चिकेतदा।। साम0 101

उपदेश : योगदर्शन में योग-मार्ग आठ मंजिलों वाला है। पहली सात मंजिलें (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

ध्यान) मानव-जीवन को स्वस्थ, सबल, सुन्दर व सुप्रज्ञ बनाकर बड़ा उत्तम बना देती हैं। इन सात मंजिलों को पार कर आठवीं मंजिल में मनुष्य प्रभु का साक्षात्कार कर पाता है।

21. उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत्।
सा शन्ताता मयस्करदप स्त्रिधः।। साम0 102

उपदेश : प्रभु से मेधा के साथ मननशीलता की कामना करनी चाहिए। विचारशीलता रक्षा के लिए होती है। विचारशीलता शान्ति का विस्तार करने वाली होती है। मन में शान्ति के कारण सारा नाड़ी संस्थान ठीक कार्य करता है और हमारा शरीर नीरोग व सुखी होता है।

विचारशीलता से हम बदले की भावना से दूर हो जाते हैं, हानि पहुँचाने की वृत्तियों से दूर हो जाते हैं। हमारा हृदय अविचारशील लोगों के लिए करुणा से आर्द्र होता है। सभी महापुरुषों ने अपना अन्त करने वालों के शुभ की ही कामना की।

22. श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह।। साम0 106

उपदेश : प्रभु केवल यान्त्रिक कीर्तन अथवा शाब्दिक प्रार्थना से प्रसन्न नहीं होते। प्रभु की अर्चना तो कर्मों के द्वारा होती है। यदि हम सकामता से ऊपर उठ अपने नियत कर्मों को कर्त्तव्य-बुद्धि से करते हैं तो हम प्रभु की आराधना कर रहे होते हैं। स्तुति नव अर्थात् क्रियामय हो, केवल शाब्दिक नहीं।

23. प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।
उपस्तुतासो अग्नये।। साम0 107

उपदेश : जिस रूप में हम प्रभु की उपासना करेंगे, वैसे ही बन जायेंगे। अतः हम प्रभु का निम्न पाँच रूपों में स्मरण करें -

(i) उस प्रभु की स्तुति करो जिसने सब कुछ जीवों के हित के लिए दिया हुआ है। प्रभु सबसे महान दाता है। इतना महान कि उनकी अपनी आवश्यकता है ही नहीं। हम भी अपनी आवश्यकताएँ न्यून और न्यून करते हुए अधिक से अधिक दानी बनने का प्रयत्न करें।

(ii) रक्षण करने वाले प्रभु का गान करो जिसकी पूर्ण अधीनता में चलने वाली प्रकृति में सब ठीक समय पर होता है। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र ठीक समय में प्रकट होते हैं। हम भी यथासम्भव सब कार्यों को ठीक समय पर करने वाले बनें, विशेषत: सोना, जागना तथा खाना जिससे हम पूर्ण आयुष्य तक चल सकें।

(iii) उस महान प्रभु का मान करो जो अपने न मानने वालों को भी भोजन आदि प्राप्त कराते हैं। हमारे विशाल हृदय में "वसुधैव कुटुम्बकम" की भावना हो।

(iv) उस प्रभु का गान करो जिसका ज्ञान निर्मल, निर्भ्रान्त और देदीप्यमान है। हम भी अपने ज्ञान को दीप्त करने के लिए सतत प्रयत्न करें और

(v) उस प्रभु का ध्यान करो जो अग्रस्थान पर स्थित हैं। हमारे जीवन का भी यह ध्येय हो कि प्रतिदिन "आगे" और "आगे" बढ़ते रहें।

24. तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।
देवत्रा हव्यमूहिषे।। साम0 109

उपदेश : जीवन स्वयं अपूर्ण होने से अपने पूरण के लिए प्रकृति या परमात्मा की अपेक्षा करता है। शरीर धारी जीव के वस्तुत: दो अंश हैं –

(1) क्षरांश – शरीर और (2) अक्षरांश – आत्मतत्त्व।

सामान्य पुरुष केवल प्रकृति की ओर झुक जाता है और कुछ शारीरिक भोगों व आनन्द को प्राप्त करने के साथ उन्हीं में उलझकर अन्त में उनका शिकार हो जाता है। समझदार ज्ञानी लोग उस दिव्य गुण परिपूर्ण प्रभु की उपासना करते हैं। वे प्रकृति के भोगों का शरीर के लिए सेवन करते हैं व उनमें फंसते नहीं और इसलिए उनका आत्मिक पतन नहीं होता। इस प्रकार उनका शरीर स्वस्थ रहता है तथा आत्मा शान्त रहती है।

25. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने।
शं यदग्वे न शाकिने।। साम0 115

उपदेश : प्रभु का गायन (कीर्तन/भजन) हममें सर्वबन्धुत्व की भावना को जन्म देता है। उस भावना के जाग्रत होने पर हम किसी का भी बुरा नहीं सोचते। इस मनोवृत्ति से परस्पर के संघर्ष समाप्त होकर शान्ति का विस्तार होता है।

प्रभु के गायन के लिए एक नियम ध्यान में रखना चाहिए कि घर के सभी सभ्य मिलकर उस प्रभु का गायन करें। इस सम्मिलित गायन से घर का सारा वातावरण बड़ा सुन्दर बनता है–एक अद्‌भुत वायुमण्डल।

26. अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने।। साम0 118

उपदेश : प्रभु का स्मरण मनुष्य को सन्मार्ग से विचलित नहीं होने देता। प्रभु गायन से मनुष्य की कर्मेन्द्रियाँ उत्तम बनी रहती हैं। वे निन्द्य कर्मों में प्रवृत्त नहीं होतीं। प्रभु के गायन से आत्मा से मेल होता है और परमात्मा की शक्ति से आत्मा शक्तिसम्पन्न बनती है। यह शक्ति सम्पन्न आत्मा इन्द्रियों को अपने वश में रखती है और इन आत्मवश्य इन्द्रियों से विषयों में जाता हुआ भी उनमें फँसता

नहीं, वरन् प्रसाद प्राप्त करता है। अतः मनुष्य इन्द्रियों को निर्दोष रखते हुए आत्मा की शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करे।

27. यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत्।
चक्राण ओपशं दिवि।। साम0 121

उपदेश : यज्ञ की भावना स्थूल रूप में त्याग की भावना है। जब मनुष्य इस भावना को अपने अन्दर जाग्रत करता है तब उसकी आत्मिक शक्ति का विकास होता है। इसके विपरीत जब वह त्याग की भावना से दूर होकर भोगों को बढ़ाने में जुट जाता है, तब वह इन्द्रियों का दास बन जाता है और उसकी आत्मा निर्बल हो जाती है। इसलिए आत्मिक शक्ति का विकास चाहने वाले अपने अन्दर यज्ञ की भावना का पोषण करें।

28. इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम्।
अनाभयिन् ररिमा ते।। साम0 124

उपदेश : परमेश्वर की दी हुई वस्तुओं में सर्वोत्तम वस्तु सोम (वीर्य) ही है। जिस जीव को इस शरीर में उत्तम ढंग से रहना हो, उसके लिए आवश्यक है कि वह सोम की रक्षा करे। वीर्य-रक्षा जहाँ हमें अशुभ वृत्तियों से बचाती है, वहीं यह उत्तम गुणों से अलंकृत भी करती है। इससे हमारे शरीर निरोग होते हैं, मन विशाल होते हैं और बुद्धियाँ तीव्र होती हैं। उस समय हम निर्भीक होकर जीवन यात्रा में आगे ही आगे बढ़ते हैं।

29. यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे।। साम0 126

उपदेश : ''ज्ञान को ही धन समझने वाले, लोगों पर सुखों की वर्षा करने वाले, प्रत्येक कर्म में लोकहित को सामने रखकर करने वाले, काम-क्रोधादि वासनाओं को परे फेंकने वाले'' के हृदयाकाश

में प्रभु की ज्योति का उदय होता है। जो भी व्यक्ति इस प्रकार इन चार दिशाओं में प्रयत्नशील होता है, उसके हृदय में यह ज्योति अवश्य उदित होती है।

**30. भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः।
वसु स्पार्हं तदा भर।। साम0 134**

उपदेश : ''बाह्य धन'' और ''आन्तर धन'' – ये दो शब्द सोना, चाँदी व ज्ञान के लिए प्रयुक्त होते हैं। मानव जीवन में दोनों धनों का स्थान है। शारीरिक आवश्यकताएँ बाह्य धन से पूरी होती हैं तो आत्मिक उन्नति ज्ञान की अपेक्षा रखती है।

हमारा जीवन इस आन्तर धन से परिपूर्ण हो। बाह्य धन की तुलना में यह आन्तर धन स्पृहणीय (प्राप्त करने योग्य/वांछनीय) है। हमारी शक्तियाँ बाह्य धन के जुटाने में ही समाप्त न हो जाएँ। हे प्रभु! आपकी कृपा से हमारा मस्तिष्क ज्ञान की ज्योति से दीप्त बने। हम ज्ञान के ही स्पृहा वाले हों।

**31. देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्।
वृष्णामस्मभ्यमूतये।। साम0 138**

उपदेश : मानव शरीर में इन्द्रियाँ देव हैं। इनका अधिष्ठाता आत्मा महादेव है। इन इन्द्रियों की रक्षा करना ही मानव जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य होना चाहिए। मकान की रक्षा, सम्पत्ति का ध्यान, स्वास्थ्य का ध्यान, गृहस्थ का पालन–ये सब आवश्यक बातें हैं लेकिन इन सब से बड़ी बात है इन्द्रियों की रक्षा करना।

ये इन्द्रियाँ वास्तव में सुखों की वर्षा करने वाली हैं लेकिन विषयों में फँसकर हमारे नाश का कारण बनती हैं। जिन ज्ञानेन्द्रियों से मनुष्य प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके मृत्यु पर विजय पाता है और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके अमृत को पाता है–वही इन्द्रियाँ विषयासक्त

होने पर अपवित्र नरक में डाल देती हैं। यदि हम इन्द्रियों (देवों) की रक्षा करेंगे तो ये इन्द्रियाँ हमारी रक्षा करेंगी।

32. अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह।
अहं सूर्यइवाजनि।।साम0 152

उपदेश : वेद में प्रभु ने तीन काण्ड रक्खे हैं- ज्ञान, कर्म और उपासना। उस प्रभु के ज्ञान के बिना मृत्यु को लाँघने व मुक्त होने का अन्य कोई मार्ग नहीं है। प्रभु ने ज्ञान प्राप्ति के लिए ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्म करने के लिए कर्मेन्द्रियाँ दी हैं। इनके अतिरिक्त उपासना के लिए कोई उपासनेन्द्रिय नहीं दी। वस्तुतः ज्ञानपूर्वक कर्म करने से ही उपासना हो जाती है। अतः अलग इन्द्रिय की आवश्यकता भी नहीं है।

मस्तिष्क-प्रयोग में श्रम है, हस्त प्रयोग में श्रम है। हृदय गति तो स्वयं होती रहती है एवं ज्ञान और कर्म होने पर उपासना स्वतः हो जाती है।

33. पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्।। साम0 155

उपदेश : प्रभु का स्तवन करने वाला व्यक्ति -

(1) सोमरक्षा के द्वारा शक्तिशाली बनता है।
(2) सब प्रलोभनों का अभिभव करने में समर्थ होता है।
(3) सदा यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगा रहता है।
(4) अपनी आवश्यकताओं को कम रखता है।
(5) सदा दानशील होता है।
(6) सांसारिक भोगों व ऐश्वर्य को महत्त्व न देकर ज्ञान को महत्त्व देता है।

34. वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते।।साम0 157

उपदेश : प्रभु की सच्ची भक्ति (1) निरन्तर कर्म करने (2) हृदय को विशाल बनाने (3) आसुर वृत्तियों का संहार करने (4) धन को ही जीवन का आदर्श न बना लेने तथा (5) प्रभु के समान सर्वज्ञ–कल्प बनने का प्रयत्न करने में है।

35. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते।
पिबा त्वा३स्य निर्वणः।। साम0 165

उपदेश : कोरी भक्ति का मानव–जीवन में कोई स्थान नहीं है। प्रभु की सच्ची स्तुति ज्ञानपूर्वक कर्म करना ही है। ज्ञान–प्राप्ति के लिए प्रभु ने ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं, कर्म के लिए कर्मेन्द्रियाँ। ज्ञान और कर्म में तत्पर पुरुष सोम का पान कर शक्तिशाली बनता है और यह शक्तिशालीता उसे सभी के साथ स्नेह करने वाला बनाती है।

36. ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः।
उत श्रोषन्तु नो भुवः।। साम0 172

उपदेश : संसार में एक मार्ग श्रद्धामूलक है, दूसरा ज्ञानमूलक। जिस मार्ग का आधार केवल श्रद्धा पर है वह अन्ततोगत्वा मनुष्य के लिए हितकर नहीं हो सकता। मनुष्य उसमें गोते ही खाता रहता है, भटकता रहता है। वह लक्ष्य–स्थान पर नहीं पहुँच पाता।

मनुष्य को ज्ञानाश्रित मार्ग पर चलना चाहिए। इस पर चलकर ही मनुष्य प्रशस्त इन्द्रियों वाला 'व्यश्व' बनता है। संसार में ज्ञान के अभाव में केवल श्रद्धा या अन्ध श्रद्धा ने बहुत हानि की है। अतः ज्ञान के मार्ग पर चलना ही ठीक है।

37. इन्द्रमिदगाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः।
इन्द्रं वाणीरनूषत।। साम0 198

उपदेश : प्रकृति के नियमों का पालन न करेंगे तो हम स्वास्थ्य

खोएंगे। जीव के नियमों का पालन नहीं करेंगे तो हम शान्ति खोएँगे। प्रभु की उपासना यदि हम नहीं करेंगे तो हम कुछ खोएँगे नहीं। हाँ, अपना मोक्ष नहीं होगा।

प्रकृति दंड देती है, जीव दण्ड देता है। प्रभु अपनी उदारता से दण्ड नहीं देते। अतः मोक्ष पाने का यत्न करना है अथवा नहीं–यह मनुष्य पर निर्भर करता है।

38. सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा।
मित्रास्पान्त्यद्रुहः।। साम0 206

उपदेश : प्राणायाम द्वारा प्राणों की साधना मनुष्य को रोगों व वासनाओं से बचाती है। दान की वृत्ति से मनुष्य व्यसनों से बचकर अपने जीवन को शुद्ध बना पाता है। स्नेह की भावना से व्यक्ति राग–द्वेष से ऊपर उठता है।

प्राणों की साधना, देने की वृत्ति और स्नेह की भावना, ये तीनों ही मनुष्य को गिरने नहीं देतीं। दूसरे शब्दों में ये तीनों मिलकर 'जीवन का मार्ग' हैं। इन वृत्तियों को अपनाने वाला व्यक्ति कभी हिंसित नहीं होता।

39. श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्।
आशिषे राधसे महे।। साम0 208

उपदेश : मनुष्य के दो कर्त्तव्य हैं– (1) प्रभु के गुण–स्तवन को सुनना और (2) सदा कर्मशील बनना। यदि मनुष्य प्रभु के गुणों का श्रवण करता है तो प्रभु उसकी वासनाओं को विनिष्ट करते हैं और जब मनुष्य श्रमशील होता है तो यह श्रम उसकी शक्ति को बढ़ाता है। श्रम करने वाले के प्रभु भी सहायक होते हैं और श्रमशीलता वासनाओं से बचने में सहायक होती है।

40. तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हि र्विभावसो।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृडय।।साम0 213

उपदेश : वीर्य रक्षा के तीन लाभ होते हैं –

(1) प्रभु की प्राप्ति (2) हृदय की वासना–शून्यता तथा (3) ज्ञान की प्राप्ति।

वीर्य रक्षा के द्वारा इन तीनों परिणामों को अपने जीवन में प्रकट करने वाले व्यक्ति ही प्रभु के सच्चे स्तोता हैं।

आइये! हम वीर्य रक्षा के द्वारा ज्ञान व नैर्मल्य को प्राप्त करके प्रभु को पाने वाले बनें।

41. आ व इन्द्रं कृवि यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः।।साम0 214

उपदेश : कुएँ के साथ सम्बद्ध खेत सदा लहलहाता है। प्रभु के साथ सम्बद्ध जीव भी उसी प्रकार शक्ति, ज्ञान व सब दिव्य भावनाओं से लहलहा उठता है। ''यह जीवन–क्षेत्र उस कुँए से दूर हुआ और सूखा।'' इसे न सूखने देने का एक ही उपाय है कि मैं कुँए के समीप रहूँ। प्रभु का सान्निध्य ही जीवन के सौन्दर्य का कारण है।

42. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजांसि सुक्रतू।। साम0 220

उपदेश : मनुष्य की इस जीवन–यात्रा की पूर्ति के लिए प्रभु ने पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं। संसार में पाँच ही विषय हैं–संसार पंचभौतिक ही तो हैं। कर्म भी दार्शनिकों से पंचविध माना गया है। अतः कर्मेन्द्रियों की संख्या भी पाँच है।

इन ज्ञानेन्द्रियों व कर्मेन्द्रियों का स्वास्थ्य प्राणापान के स्वास्थ्य पर निर्भर है। प्राणापान ठीक हों तो ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान से दीप्ति व निर्मल रहती हैं और कर्मेन्द्रियों में माधुर्य बना रहता है।

43. कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ अव श्मशा रुधद्वाः।
दीर्घं सुतं वाताप्याय।।साम0 228

उपदेश : प्रभु हमसे तीन बातें चाहते हैं –

(1) हमारा झुकाव प्रकृति के भोगों की ओर न हो, हम प्रभु–स्तवन करने वाले बनें।

(2) हम वीर्य का संयम करें और

(3) हम अपने अन्दर ज्ञान–सूर्य का उदय करें।

उपरोक्त तीनों बातें प्राणों की साधना (प्राणायाम) करने पर जीवन में स्वयं आ जाती हैं।

44. न किष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम्।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा।।
साम0 243

उपदेश : प्रभु जो कि सारे ब्रह्माण्ड का धारण करने वाले हैं। उसको वही पा सकता है जो प्रभु की भांति विश्व का धारण करने वाला बनता है, सब प्राणियों के हित में लगा होता है, ज्ञान से चमकता है और वासनाओं को ज्ञानाग्नि में भस्म कर देता है, कभी कामादि से आक्रान्त नहीं होता और ओज से सभी शत्रुओं का पराभव करता है।

45. आ त्वा सहस्त्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये।।
साम0 245

उपदेश : हमारी चित्तवृत्तियाँ जब संसार के विषयों में उलझ जाती हैं, तब क्षणिक आनन्द के पश्चात् विषादमय हो जाती हैं, परन्तु यदि संसार में विचरती हुई ये प्रभु को नहीं भूलतीं तो यह सदा प्रसादमय बनी रहती हैं। बड़ी–से–बड़ी सांसारिक विपत्तियों में भी

ये अपने हास्य व विकास को नहीं छोड़तीं। प्रभु से दूर न होने के कारण ही ये सदा प्रकाश में रहती हैं–ऐसे व्यक्ति को कभी अपना कर्त्तव्य–पथ अन्धकारमय प्रतीत नहीं होता। उसका शरीर रूप रथ ज्योतिर्मय रहता है। अन्त में ये ही चित्तवृत्तियाँ हमें प्रभु से मिलाने वाली होती हैं।

46. इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः।
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः।।

साम0 294

उपदेश : मानव–जीवन में मनुष्य का मूल कर्त्तव्य यही है कि संयमी बनकर हृदयस्थ प्रभु की वाणी को सुनें, सुनने के बाद उसे करें और प्रभु के प्रति अपना अर्पण कर डालें। जो भी खाली समय मिले, उसमें प्रभु का स्मरण करें। ऐसा करने पर ही मनुष्य का जीवन सुन्दर व दिव्य गुणों वाला बनता है।

47. आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं च ईशानं न याचिषत्।।

साम0 307

प्रभु सब ऐश्वर्यों के स्वामी हैं। उसे सभी प्राप्त करना चाहते हैं परन्तु केवल चाहने से प्रभु नहीं मिलते हैं। प्रभु को पाने के लिए जीवन को क्रोधशून्य बनाना अत्यन्त आवश्यक है। मधुर वाणी व क्रोधशून्यता–ये दो उपाय हैं प्रभु–प्राप्ति के लिए। इनको अपने जीवन का अंग बनाये बिना कोई भी व्यक्ति प्रभु को नहीं पा सकता।

आइये! मधुर बोलें और क्रोध से दूर रहें।

48. विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान।।

साम0 325

उपदेश : अत्यन्त वृद्धावस्था में हम एकदम पराधीन हो जाते हैं, सब इन्द्रिय-वृत्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, हम प्रिय मित्रों के भी करुणा के पात्र मात्र रह जाते हैं। सब घर वाले हमारी सेवा से तंग आ चुके होते हैं, वे भी दिल से हमारे चले जाने की ही कामना कर रहे होते हैं। ऐसे समय में प्रभु की भेजी हुई मौत एक बड़ी सुन्दर वर्णनीय वस्तु ही तो हैं

49. प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम्।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्राः।। साम0 328

उपदेश : जितना ही हम प्रभु-सम्पर्क में रहेंगे, उतना ही हमारा जीवन 'सत्य, शिव व सुन्दर' बनेगा। आइये (1) प्रभु नमन से हम अपनी महान उन्नति करें, (2) कल्याणी मति से अपने मस्तिष्क को स्वस्थ रखें और (3) लोगों को ज्ञान के लिए उत्सुक बनाकर उन्हें ज्ञान दें।

50. उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि।।
साम0 330

एक आदर्श जीवन में 'ज्ञान, उपासना व कर्म' तीनों को उचित स्थान प्राप्त होता है। ज्ञान और कर्म के मध्य में यहाँ ''उपासना'' को इसीलिए रखा गया है कि ज्ञानपूर्वक कर्मों से ही वह साध्य होती है। उपासना से ज्ञान उज्जवल होता है तो कर्म पवित्र होते हैं।

केवल ज्ञानी ज्ञानदैत्य बन जाता है, केवल भक्त अन्धभक्त (fanatic)हो जाता है और केवल कर्म मनुष्य को अनन्त रीतियों (rituals) के जंजाल में फंसा देता है। इन तीनों के समन्वय से मनुष्य का जीवन अत्युत्तम बनता है।

51. आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः।।साम0 349

उपदेश : जब कभी हमारे सामने कोई धर्मसंकट उपस्थित होता है तब यह वेदवाणियाँ हमें उस उलझन से निकलने में सहायक होती हैं। धर्मसंकट की स्थिति सबके जीवनों में उपस्थित होती है। यदि हम नियमित रूप से वेदवाणियों का सेवन करते हैं तो ये वाणियाँ हमारी पथप्रदर्शक बनती हैं। उनके अनुसार मार्ग का अनुकरण करके हम भोगमार्ग से बचे रहते हैं, परिणामतः रोगों से बच जाते हैं और हमारी इन्द्रिय-शक्तियाँ जीर्ण नहीं होतीं।

52. दधिक्राष्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत् प्र न आयूँषि तारिषत्।। साम0 358

उपदेश : मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह रचनात्मक कार्य ही करे, तोड़-फोड़ के नहीं। विजयशील हो, उदार हो, शक्ति का सम्पादन करे और मीठा बोले। इन सुन्दर गुणों को अपने में धारण करने वाला मनुष्य ही प्रभु का सच्चा स्तोता है। ऐसे मनुष्य की सब इन्द्रियाँ प्रभु का गुणगान करने में लगी रहती हैं। अतः प्रशस्त बनी रहती हैं।

53. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः।
साम0 359

उपदेश : जीव तीन दीवारों वाले एक किले के अन्दर कैद है। इन्हें ही "स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीर" कहा जाता है। स्थूल शरीर तो समय पाकर स्वयं ही समाप्त हो जाता है और कारणशरीर प्रकृति रूप होने से इतना व्यापक है कि वह बन्धनरूप प्रतीत नहीं होता। बीच का सूक्ष्म शरीर जो इन्द्रियों, मन और बुद्धि से बना हुआ है,

यही जीव के बन्ध का सबसे बड़ा कारण है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ही असुरों (दानवों/काम, क्रोध, लोभ आदि) के आक्रमण से आक्रान्त होकर असुरपरियाँ बन जाती हैं और जीव का बन्धनागार हो जाती हैं।

जीव का कर्त्तव्य है कि वह इस काम–क्रोध–लोभ को जीते और इस प्रकार इन असुरपरियों का ध्वसं करके मुक्त हो सके।

54. एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः।
एवा हि वीर स्तवते सदावृधः।। साम0 385

उपदेश : सोम ही वह शक्ति हे जो सब उन्नतियों के मूल में है। इसके बिना किसी प्रकार की उन्नति संभव नहीं। यह जड़ जगत् की सर्वोत्तम वस्तु है।

सोमपान का सर्वोत्तम लाभ तो यही है कि इससे मनुष्य प्रभु की प्राप्ति योग्य बनता है।

भोगमार्ग में सोम का अपव्यय है–योगमार्ग में सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है और तब उस तीव्र–बुद्धि से मनुष्य परमेश्वर का दर्शन करता है।

55. यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन्।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब।।साम0 392

उपदेश : ईर्ष्यालु पुरुष का मन कभी शान्ति का अनुभव नहीं करता, क्योंकि यह स्वास्थ्य, धन, सुप्रजा, यश पाकर भी दूसरे को कुछ आगे बढ़ा देखकर जलता ही रहता है। ईर्ष्यालु पुरुष का मन मृत सा रहता है। इसे तो तभी शान्ति आती है, जब यह दूसरे का पतन देखता है। एक के पतन के बाद किसी और की स्पर्धा चल पड़ती है–फिर उसका मन अशान्त हो जाता है।

मनुष्य को इस ईर्ष्या का नाश करना चाहिए। इसका नाश

सोमपान से हो सकता है। सोम का पान जहाँ वृत्र (काम) का विनाश करता है, वहाँ इस शम्बर (ईर्ष्या) का भी।

संयमी पुरुष ईर्ष्या से दूर रहता है। ईर्ष्या से दूर होकर इसका मन प्रसन्न होता है। इस प्रसन्नता से दु:खों का नाश ही नहीं, अपितु बुद्धि का विकास भी होता है।

56. स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्यः।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु स्वराज्यम्।
साम0 409

उपदेश : वेदज्ञान रस वाला है। यह अनुभव प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति का होता है। प्रारम्भ में अगम, दुर्बोध, नीरस प्रतीत होने वाले मन्त्र जरा-सा प्रवेश होने पर सरस प्रतीत होने लगते हैं-उनके शब्दों का क्रम चमत्कारिक दिखता है। ये वेदवाणियाँ मधुरूप हैं-अत्यन्त सारभूत हैं। इनका एक-एक शब्द ज्ञान का भण्डार है। इनमें सम्पूर्ण ज्ञान बीज रूप से निहित है।

जब इन्द्रियाँ आत्मा से दूर प्राकृतिक भोग पदार्थों में विचरती हैं। तब इनके लिए वेदवाणियाँ रुचिकर नहीं होतीं। लेकिन आत्मा के साथ विचरने के कारण ये भोगमार्ग पर नहीं जातीं और शक्ति-उल्लास व शक्तिजन्य कर्मों से शोभा वाली होती हैं। आइये! अपनी इन्द्रियों से सदा वेदवाणी का पान करें।

57. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽ विषत्।।
साम0 411

उपदेश : भोग मार्ग प्रारम्भ में रमणीय है, परन्तु उत्तरोत्तर उसकी रमणीयता कम होती जाती है। इसके विपरीत संयम-मार्ग में प्रारम्भ में नीरसता व कठिनता है, परन्तु उत्तरोत्तर उसका सौन्दर्य बढ़ता

जाता है। इन्द्रियों को वश में करने वाला व्यक्ति आनन्द के लिए बढ़ता चलता है।

जितेन्द्रियता व संयम का परिणाम यही है कि जीवन अधिकाधिक उल्लासमय व क्रियाशील होता चलता है और यह क्रियाशीलता वासनाओं को नष्ट करती जाती है।

58. एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे।।

साम0 438

उपदेश : ईश्वर सर्वशक्तिमान है, सब असुरों का संहार करने वाले हैं–आसुर वृत्तियों को नष्ट करने वाले हैं। सदा पुकारने के योग्य हैं। जीव को जब कभी दु:ख होता है, उस समय तो वह प्रभु को पुकारता ही है परन्तु सुख के समय भी प्रभु पुकारने योग्य है जिससे हमारा मस्तिष्क स्वस्थ रहे।

59. ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ।।

साम0 439

उपदेश : ज्ञानी लोग मन्त्रों से उस सर्वशक्तिमान प्रभु की उपासना करते हैं, उसको बढ़ाते हैं, उसकी दिव्यता को अपने में भरते हैं। प्रभु न्यायकारी है–मैं भी न्यायकारी बनूँ, प्रभु दयालु है–मैं भी दया की वृत्ति वाला बनूँ। यही प्रभु को बढ़ाना है। इसके बिना हम अपने से कुटिलता की वृत्ति को दूर नहीं कर सकते।

60. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।।

साम0 440

उपदेश : वास्तव में मनुष्य वह है जो प्रेय मार्ग की चमक से न चुँधियाकर श्रेय मार्ग का अवलम्बन करता है। प्रकृति के भोगों में न फंसकर जिसने प्रभु–प्राप्ति के मार्ग का अवलम्बन किया, वही मनुष्य कहलाने के योग्य है। संसार के भोगों में उलझकर जीवन

यापन कर देना पाशविक जीवन है। मनुष्य प्रभु की ओर चलता है–पशु प्रकृति की ओर।

61. शं पदं मघं रयीषिणे न काममव्रतो हिनोति न स्पृशद्रयिम्।।

साम0 441

उपदेश : पूर्ण शान्ति को, ब्रह्म को वही प्राप्त करता है जो धन के प्रति आसक्त नहीं होता। दान करता है। जो भी व्यक्ति इस दान के व्रत को धारण नहीं करता, वह बेशक कितना ही हाथ–पैर मारे–इस शान्ति के पद को प्राप्त नहीं करता। धन के संग्रह में शान्ति नहीं है।

शान्ति की प्राप्ति ब्राह्मीभाव में है, यह भाव सर्वलोक हित में रत होने से प्राप्त होता है। उसी भूतहित का प्रतीक दान है।

62. आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः।।

साम0 443

उपदेश : मनुष्य एकाग्रचित्त से प्रभु के ध्यान में तल्लीन हो, उसे किसी सांसारिक वस्तु का ध्यान न हो–वह योगनिद्रागत हो–ऐसे ध्यान को 'वनस्' कहते हैं। जब मनुष्य इस ध्यान की स्थिति में होता है तब उसकी इन्द्रियाँ, प्रभु का राज्य हो जाने पर, अपने मार्ग से विचलित नहीं होतीं–चाहें दिन हो या रात। ऐसे उपासक की वाणी दिन में ही नहीं–रात को स्वप्न में भी असत्य नहीं बोलती–यही तो उपासना की महिमा है।

63. प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत य जुजोषते।।

साम0 446

उपदेश : जब हम प्रभु का गायन करते हैं, उसकी उपासना करते हैं तो प्रभु परम ऐश्वर्य तो प्राप्त कराते ही हैं, परन्तु महत्त्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि हमारी वासनाओं का विनाश हो जाता है। वासनाओं का विनाश ही मलों का दूर होना है। उस निर्मल हृदय

में प्रभु के सान्निध्य से दिव्य भावनाओं का भरण होता है। राग–द्वेष का स्थान प्रेम ले–लेता है, औरों को तुच्छ समझने का स्थान करुणा ले लेती है, ईर्ष्या के स्थान में आगे बढ़ने की भावना उत्पन्न होती है, अभिमान का स्थान विनय लेती है और भय के स्थान में देवपूजा की भावना उत्पन्न हो जाती है। इस परिवर्तन का अनुभव करने वाले विद्वान जिस प्रभु को प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं, हम भी उस प्रभु की उपासना करें।

64. यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा।
देवावीरघशंसहा।। साम0 470

उपदेश : इस संसार में कितने ही 'मद' हैं। धन का मद है–जो धतूरे के मद से भी कहीं बढ़कर है। बल का भी मद होता है–एक पहलवान कुछ इतराता हुआ सा चलता है। कई बार योगसाधना करते हुए तपस्वी को अपने तप की शक्ति का भी मद हो जाता है। कइयों में विद्या का मद देखा जाता है। ये सब हेय (तुच्छ) हैं–इनका परिगणन 'काम–क्रोध, लोभ–मोह, मद–मत्सर, इन छः शत्रुओं में है। शत्रु होने से ये मद त्याज्य हैं।

परन्तु प्रभु ने अधिक से अधिक ध्यान देने योग्य (अध्यायनीय) सोम के द्वारा भी एक मद हममें उत्पन्न किया है। इस सोम के सुरक्षित होने पर इसका अनुभव होता है। यह सोमजनित उल्लास हमें सब प्रकार से दिव्यता की ओर ले चलने वाला है। इससे हम में उत्तरोत्तर दिव्यता का विकास होता है। हमारे अन्दर पाप का नामशेष भी नहीं रहता। हमारा जीवन सचमुच पवित्र व दिव्य बन जाता है। सोमजनित 'मद' सचमुच वरणीय है।

65. पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यशसो जने।
विश्वा अप द्विषो जहि।।साम0 479

उपदेश : सोम के संयम से जीवन पवित्र बनता है। पवित्र ही नहीं, शक्तिशाली भी होता है। इस पवित्रता और शक्ति के परिणामस्वरूप यह अमहीयु कोई भी ऐसा कार्य नहीं करता जो उसके अपयश का कारण बने। स्वार्थ की भावनाओं से ऊपर उठकर यह लोकहित के लिए कर्म करता है और परिणामतः इसके यश की गन्ध चारों ओर फैलती है। यह किसी के साथ द्वेष भी नहीं करता। इसका जीवन सबके प्रति प्रेम का बर्ताव वाला होता है।

66. उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम्।
इन्दुं देवा अयासिषु।। साम0 487

उपदेश : सोम के सुरक्षित होने पर जीवन में निम्न परिणाम उत्पन्न होते हैं –

(1) उत्तम विकास

(2) ज्ञानपूर्वक शीघ्रता से कार्य करने की शक्ति

(3) वासनाओं का भंग और

(4) जीवन का परिमार्जन

इस प्रकार जीवन को उत्तम बनाने वाले इस सोम को वे ही प्राप्त करते हैं जो देव बनने का प्रयत्न करते हैं।

67. पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः।। साम0 488

उपदेश : सोम की रक्षा से हमारा जीवन पवित्र होता है। यह सोम रोगकृमियों पर आक्रमण करके हमारे शरीरों को स्वस्थ बनाता है और वासनाओं पर आक्रमण करके हमारे मनों को निर्मल बनाता है। बुद्धि की कुण्ठा को दूर कर उसे तीव्र बनाता है।

इस सोम के शरीर में सुरक्षित रखने का सर्वमहान उपाय प्रभु का ध्यान ही है। सदा प्रभु का चिन्तन करने वाला व्यक्ति

वासनाओं का शिकार नहीं होता और सोम को सुरक्षित रख पाता है।

68. अपघ्नन पवते मृधो ऽ प सोमो अराव्णः।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम्।। साम0 510

उपदेश : सोम के संयम से मानव-जीवन में "काम-क्रोध-लोभ" दूर हो जाते हैं। ये मनुष्य के सर्वमहान् शत्रु हैं। मनुष्य की आत्मा का हनन करने वाले हैं। यह सोम न देने की वृत्तियों को दूर करता है। सोम का संयम मनुष्य को उदार बनाता है-इसके जीवन में कृपणता को स्थान नहीं मिलता।

69. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि।।
साम0 528

उपदेश : वेदवाणियाँ पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि उस प्रभु की ओर चलो

- जो शरीर, मन व बुद्धि तीनों का आधार है।
- जिस प्रभु की शक्ति से त्रिविध उन्नति संभव होती है।
- जो हमारे सब कोशों में शक्ति को प्राप्त कराने वाला है।

अन्नमयकोश में तेजस्, प्राणमयकोश में वीर्य, मनोमयकोश में ओज व बल, विज्ञानमयकोश में मन्यु-ज्ञान तथा आनन्दमयकोश में सहस प्रभु की उपासना का अभाव ही असमय मृत्यु का कारण बनता है।

70. अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामङ्गोषिणमवावशन्त वाणीः।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि।।
साम0 528

उपदेश : वेद वस्तुतः सृष्टि के प्रारम्भ में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान

देने के लिए ही तो उच्चारित हुआ था। वेदों के द्वारा प्रभु मनुष्य को निरन्तर ज्ञान की रश्मियाँ प्राप्त करा रहे हैं। अब मनुष्य यदि इसका अध्ययन न करके कर्त्तव्याकर्त्तव्य को नहीं जान पाता तो यह उसकी गलती है। लेकिन उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रभु, प्रार्थना व विनती के द्वारा, पाप क्षमा नहीं करता है। उसकी प्रार्थना से प्रभु का हृदय नहीं पसीजेगा। दण्ड देते हुए वे रुद्र प्रतीत होते हैं, वास्तव में है तो वे 'शिव' ही। इन दण्डों को भी वे हमारे कल्याण के लिए ही देते हैं। दण्ड आदि व्यवस्था से वे हमारी पाप-प्रवृत्ति को ही दूर कर देते हैं।

71. अपामिवेदूर्मयस्तर्त्तुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ।
नमस्ययन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम्।।

साम0 544

उपदेश : वैदिक उपदेशों से हमें प्रभु का ज्ञान होता है-तप, स्वाध्याय व ईश्वर-प्रणिधान से उसका दर्शन होता है और अन्त में विषयों के प्रति पूर्ण अरुचि तथा प्रभु-प्राप्ति की प्रबल कामना से प्रभु से मेल होता है। प्रभु-प्राप्ति के मार्ग पर चाहे हम धीमे-धीमे बढ़ें-रूके नहीं तो लक्ष्य तक पहुँचेंगे ही।

72. सोमाः पवन्त इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः।।साम0 548

उपदेश : संसार में दो ही मार्ग हैं-एक दिव्यता का और दूसरा भौतिकता का। ये ही श्रेय व प्रेय कहे गये हैं। मनुष्य को इनमें चुनाव करना है। धीर पुरुष सब दृष्टिकोणों से इनका विवेक करता है और विवेक करके-प्रेय को न चुनकर श्रेय का ही वरण करता है। यह श्रेय मार्ग पर चलने वाला अपने जीवन को निम्न प्रकार का बनाता है -

- विनीत होता है। अभिमान से इसकी दिव्यता कलंकित नहीं होती।
- गतिशील होता है। वस्तुतः गतिशीलता ही इसके जीवन को पवित्र करने वाली है।
- पवित्रता के कारण – भोगग्रसित न होने के कारण यह शक्तिशाली होता है।
- यह ज्ञान देने वाला होता है। इसका जीवन समाज के लिए पथ–प्रदर्शन का काम करता है।
- यह समाज का हित चाहने वाला होता है। इसलिए इसकी वाणी का हमारे हृदयों पर विशेष प्रभाव होता है।
- यह अपने उपदेशों से हम सबके अन्दर उत्साह का संचार करता है।
- इसका स्वयं का जीवन निर्दोष होता है।
- यह उत्तम ध्यान वाला होता है। प्रभु का ध्यान इसे पापों से बचाये रखता है।
- यह ब्रह्मनिष्ठ होता है।

73. इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्त्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह।
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः।।

साम0 561

उपदेश : वीर्य के अपव्यय से जहाँ शरीर के अन्दर रोग उत्पन्न हो जाते हैं, वहाँ मन में भी अशुभ विचार आ जाते हैं। मनुष्य अपने रमण के लिए औरों का क्षय करने लगता है। यह रमण के लिए क्षय ही 'रक्षस्' वृत्ति कहलाती है। जीवन में संयमी होने पर हमारे अन्दर ये अशुभ वृत्तियाँ नहीं पनपतीं।

74. समन्या यन्त्युपयन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपात्रपातमुप यन्त्यापः।।
साम0 607

उपदेश : आध्यात्मिक ज्ञान से मनुष्य का दृष्टिकोण विशाल बनता है। इस समय इसके कर्म, स्वार्थ की दृष्टि से न किये जाकर, सर्वभूतहित की दृष्टि से किये जाते हैं। अतः व्यापकता को लिए हुए होते हैं। ये व्यापक कर्म ही उसे प्रभु का सच्चा भक्त बनाते हैं। प्रकृति में विचरते हुए भी ऐसा मनुष्य प्रकृति में नहीं उलझता, परिणामतः प्रकृति से सदा ऊपर उठा रहता है और उस प्रभु में जीवन–यापन करता है। यही जीवनमुक्ति कहलाती है–यही सदेह होते हुए भी विदेह होना होता है।

75. आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः।। साम0 630

उपदेश : प्रभु प्राप्ति की कामना करने वाले को निम्न चार बातें करनी चाहिए –

(1) वह गतिशील हो। मनुष्यों में पौरुष ही प्रभु का रूप है।
(2) उसके अन्दर प्रबल जिज्ञासा हो। जिज्ञासु भक्त ही अन्त में ज्ञानी भक्त बनता है।
(3) वह सब ज्ञानेन्द्रियों से ज्ञान प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करे। इस ज्ञान से उसे कण–कण में प्रभु की महिमा के दर्शन होंगे।
(4) वह सर्वप्रथम वेदमाता को अपनाये क्योंकि सारे वेद उस प्रभु का प्रतिपादन करते हैं। यह वेदवाणी माता की भाँति कल्याणी है–हमारे जीवन का निर्माण करके, ज्ञान को बढ़ाकर, हमें प्रभुदर्शन कराती है।

ऐसा करने पर प्रभु ज्योतिर्मय रूप में उसके हृदय में प्रकट होता है। पग–पग पर उसे प्रभु के रक्षण–विधानों का आभास मिलता है और वह उसे पिता के रूप में देखता है।

76. उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे।
उग्रं शर्म महि श्रवः।। साम0 672

उपदेश : पार्थिव भोगों में फँसकर मनुष्य प्रभु की समीपता और महान आनन्द का अनुभव कभी नहीं कर पाता है। यह प्रकृति में फँसकर जीर्ण शक्ति और व्याधियों का शिकार हो जाता है। साथ ही, यह अधिक खाने वाला व्यक्ति लोक में भी निन्दित होता है। लोग उसे पेटू आदि शब्दों से स्मरण करने लगते हैं।

वस्तुतः हम संसार में खाने के लिए ही आये भी तो नहीं। स्वादिष्ट भोजनों के खाने में व्यस्त पुरुष तो पशुओं से भी कुछ गिर सा जाता है, पशु भी शरीर धारण के लिए ही खाते हैं–स्वाद के लिए नहीं।

77. स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
वरिवोवित् परि स्त्रव।।साम0 673

उपदेश : जब मनुष्य धन को अपना–स्वयं का कमाया हुआ समझने लगता है तभी उसमें –उसे स्वार्थ के लिए व्यय करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

मनुष्य इस बात को कभी न भूले कि सब धनों के वास्तविक स्वामी तो परमात्मा ही है। जिस दिन हम इस तत्त्व को समझ लेंगे, उस दिन हम धनों के स्वामी न रहकर निधि–प= Trustee हो जाएँगे और निधि के स्वामी के आदेश के अनुसार ही हम उस निधि का विनियोग करेंगे। तब हम अपने ‘‘स्वास्थ्य रूप धन’’ का विनियोग भी केवल अपने आनन्द के लिए न करके लोकहित

के लिए करेंगे। हमारा ज्ञान भी लोकहित के लिए होगा।

78. पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः।।
साम0 675

उपदेश : सोम (वीर्य) के सात गुण निम्न हैं –

(1) यह वीर्यशक्ति शरीर के अस्वस्थ करने वाले तत्त्वों को शरीर से दूर करके उसे पवित्र रखती है। अतः शरीर स्वस्थ बना रहता है।

(2) वीर्यवान पुरुष सदा क्रियाशील व आलस्य से दूर रहता है। निवीर्यता ही मनुष्य को अलस बनाती है।।

(3) सोम से सारा शरीर रमणीय हो उठता है, कान्ति–सम्पन्न बन जाता है। क्या शरीर, क्या मन, क्या बुद्धि–सभी श्री–सम्पन्न हो जाते हैं।

(4) सोम के धारण करने से मनुष्य प्रभु की उपासना के योग्य बनता है।

(5) सोम को शरीर में धारण करने पर एक स्वाभाविक आनन्द का प्रवाह बहता है जो शारीरिक स्वास्थ्य और मनः प्रसाद का सूचक है।

(6) सोम मनुष्य को दिव्य प्रवृत्तिवाला बनाता है, उसे राग–द्वेष से ऊपर उठाता है।

(7) यह मस्तिष्क को ज्योतिर्मय बनाता है। मन को निर्मल और बुद्धि को दीप्त बनाता है।

79. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता।। साम0 682

उपदेश : ऋणात्मक धर्म (झूठ न बोलना, चोरी न करना, द्वेष न

करना, कड़वा न बोलना आदि) के पालन से मनुष्य एक भद्र पुरुष बन जाता है, परन्तु देव बनने के लिए केवल ऋणात्मक धर्म के पालन से काम नहीं चलता। उसके लिए धनात्मक धर्म का पालन आवश्यक होता है।

''जनता के अन्धकार को दूर करना'' यह उस धनात्मक धर्म का सामान्य रूप है। इस अन्धकार को दूर करने की प्रक्रिया में खण्डन-मण्डन की आवश्यकता होती है। वह खण्डन कईयों के लिए अप्रिय होता है-और बस, नासमझी के कारण ये उस देवमार्ग पर चलने वाले के विरोधी हो जाते हैं-कई बार उसकी जान भी लेने के लिए उतावले हो उठते हैं। अतः यह स्पष्ट ही है कि देवमार्ग पर चलने वाले के लिए बड़ा वीर व निर्भीक होना नितान्त आवश्यक है और यह निर्भीकता उसे प्रभु की उपासना से प्राप्त होती है।

80 (ए).तं दूरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्या धिया।
यज्ञाय सन्त्वद्रयः।।साम0 699

उपदेश : यह सोम - क्या शरीर, क्या मन और क्या बुद्धि-सभी स्थानों की मलीनता को नष्ट कर देता है। रोगकृमियों को, द्वेषादि की वृत्तियों को तथा बुद्धि की कुण्ठता को दूर करता हुआ यह सचमुच 'अभिदुरोषम्' है। इस सोम की रक्षा के लिए इसका कहीं-न-कहीं विनियोग आवश्यक है।

हम भोग में फँसकर इसका अपव्यय कर बैठते हैं। परन्तु नर व्यक्ति ऐसा कभी नहीं करते। वे इसका विनियोग ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान को प्राप्त करने में तथा उत्तम कर्मों में किया करते हैं। इसीलिए वे आदरणीय होते हैं।

80 (बी) उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत्।
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम्।।
साम0 709

उपदेश : यह संसार चक्की के दो पाटों के समान है। इसमें व्यक्ति प्रभु रूपी कीली से दूर हुआ और पिसा। प्रभु रूपी कीली से जुड़ने के लिए मनुष्य को प्रभु–जैसे बनने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रभु के जो गुण, स्वभाव वरणीय हैं, उनको पुरुषार्थ करके प्राप्त करना चाहिए। पुरुषार्थ के उपरान्त ही प्रार्थना की सार्थकता है।

'हमारा प्रत्येक कर्म पवित्र बना रहे, कोई प्रलोभन हमें अपना शिकार न बना ले' इसके लिए आवश्यक है कि हम प्रभु के समीप बने रहें। प्रभु का स्मरण करें और संसार में अपने युद्ध को जारी रखें।

81. युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा।
इन्द्रवाहा स्वर्विदा।। साम0 692

उपदेश : प्रभु स्मरण से अनेक लाभ हैं, कुछ का वर्णन निम्न है –

(1) शरीर रूप रथ विशाल बनता है, क्योंकि यह स्तोता वासनाओं का शिकार न होने से सदा स्वस्थ शरीर वाला होता है।

(2) यह स्तोता विशाल मन वाला होता है, मन को युग कहा है, क्योंकि इन्द्रियों को आत्मा से जोड़ने वाला है। प्रभु स्मरण से मनुष्य ईर्ष्या–द्वेषादि से ऊपर उठ सभी को अपना बन्धु समझने वाला बनता है और परिणामतः महान हृदय वाला होता है।

(3) इन्द्रियरूप घोड़े वैदिक मार्ग का अनुकरण करते हुए हमें प्रभु की ओर ले चलते हैं और सुखमय स्थिति में प्राप्त कराते हैं।

82. इन्द्र इन्नो महोना दाता वाजानां नृतुः।
महाँ अभिज्ञ्वा यमत्।। साम0 715

उपदेश : प्रभु स्वयं सब शक्तिशाली कर्मों के करने वाले हैं। वे सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयरूप महान कर्म करने वाले हैं। इन कर्मों का विचार उस प्रभु की अचिन्त्य शक्ति का कुछ आभास देता है।

उस प्रभु ने अपनी शक्ति के अंश से जीव को भी शक्ति-सम्पन्न बनाया है और शक्ति देकर हमें इस संसार के नाटक में अपना पार्ट अदा करने की योग्यता व क्षमता प्राप्त करायी है। उस शक्ति को प्राप्त करके मनुष्य नाना प्रकार के कर्मरूप नृत्यों को किया करता है। इस नृत्य करने में हमें उस प्रभु ने स्वतन्त्रता दी है। वस्तुतः क्षमता का विकास स्वतन्त्रता में ही सम्भव है। परतन्त्रता में परसंचालित होने से यदि गलती की कम सम्भावना है तो विकास तो असम्भव ही है, अतः प्रभु ने शक्ति प्राप्त कराके हमें नृत्य कर्म का स्वातन्त्रय दिया है। चाहे जैसा नाच हम नाचें, प्रभु हमें रोकते नहीं। समय-समय पर उचित प्रेरणा वे अवश्य प्राप्त कराते हैं। वे क्रुद्ध नहीं होते, वे उदार हैं, परन्तु जब हम प्रेरणा को निरन्तर अनसुना करके गलत ही नृत्य करने के आग्रही हो जाते हैं, तब वे प्रभु इस प्रकार हमारा नियमन करते हैं कि जीव को घुटने टेकने ही पड़ते हैं।

जीव कर्म करने में निःसन्देह स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में परतन्त्र ही है।

83. न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्।
भीमं न गां वारयन्ते।।साम0 730

उपदेश : दान मनुष्य की सब अशुभ भावनाओं को नष्ट करता है और उसके जीवन को शुद्ध बनाता है। लोभ ही तो सब वासनाओं का मूल है। लोभ गया तो वासनाएँ गईं। मूल कटा तो वृक्ष कहाँ बचा। दाता तो वासनाओं के लिए भयंकर साँड के समान हो जाता है। उसके सामने वासनाएँ ठहर ही कहाँ सकती हैं।

84. न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्त्रेधन्तं रयिर्नशत्।
सुशक्तिरिन् मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि।।
साम0 868

उपदेश : दान न देने वाले कृपण की निन्दा होती है। उसके लिए कंजूस-मक्खीचूस आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इसके विपरीत दान देने वाले की कभी निन्दा नहीं होती, उसकी सदा प्रशंसा ही प्रशंसा होती है। जो धन नहीं देता और अपने पास ही इस धन को रोकने का प्रयत्न करता है, उसका रखा हुआ धन मनुष्य को निधन (मृत्यु) की ओर ले जाता है। दिया हुआ धन ही मनुष्य की शक्ति व जीवन का कारण बनता है। इस प्रकार हमारा इहलौकिक जीवन तो 'स्वस्थ, सबल व सुन्दर' बनता ही है, परन्तु साथ ही यह दान मनुष्य को ज्ञान के प्रकाश में स्थापित करता है जो कि उसे भवसागर से पार लगाने का उत्तम साधन है।

85. सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
सोमा अर्षन्तु विष्णवे।। साम0 766

ब्रह्मचर्य के लिए पाँच बातें आवश्यक हैं -

(1) जितेन्द्रियता : शक्ति की रक्षा के लिए हम इन्द्रियों-विशेषतः स्वादेन्द्रिय-जीभ को वश में करें। इसको वश में किये बिना ब्रह्मचर्य-पालन सम्भव नहीं।

(2) क्रियाशीलता : जो ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, उसे आलसी कभी नहीं होना चाहिए। आलस्य वासनाओं को आमन्त्रित करता है और हम शक्ति की रक्षा नहीं कर पाते।

(3) व्रतपतित्व : जो अपने को विविध व्रतों के बंधनों में बाँधता है, वही ब्रह्मचारी हो पाता है। इसके अतिरिक्त ईर्ष्या-द्वेष आदि की भावनाएँ भी तुच्छ व क्षुद्र हैं। यह ब्रह्म की ओर चलने की ठीक विरोधी हैं।

(4) प्राणायाम : प्राणायाम व प्राण साधना करने वाला ही ब्रह्मचारी होता है।

(5) व्यापक मनोवृत्ति : ब्रह्मचर्य के पालन में मानस उदारता व विशालता भी बड़ा महत्त्व रखती है। मन का संकोच ही प्रेम को संकुचित करके कामवासना के रूप में परिवर्तित कर देता है। यह वासना ब्रह्मचर्य को नष्ट करती है।

86. ये ते पवित्रमूर्मयोऽ भिक्षरन्ति धारया।
तेभिर्नः सोम मृडय।। साम0 788

उपदेश : सब क्लेशों का मूल 'अविद्या' है। अज्ञान के कारण ही सब क्लेश=कष्ट हैं। क्लेशों से ऊपर उठने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। प्रभु ने इस प्रकाश को वेदवाणी में रखा है। वेदवाणी में निहित ये प्रकाश उस व्यक्ति को प्राप्त होते हैं, जो अपने हृदय को पवित्र बनाता है।

87. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्।
हव्यवाहं पुरुप्रियम्।। साम0 791

उपदेश : वेद में यह बात सुव्यक्त है कि केवल परमेश्वर ही उपासना के योग्य है–"य एक इत् हव्यश्चर्षणीनाम्" जब मनुष्य प्रभु का यह स्थान किसी मनुष्य को देता है, तब उसकी सब पवित्रता समाप्त हो जाती है। वह अपने को प्रभु का विशिष्ट पुत्र मानने लगता है और दूसरे उसकी दृष्टि में काफिर व नास्तिक हो जाते हैं। इसीलिए वेद कहता है कि हम प्रभु को और केवल प्रभु को पुकारते हैं जो – (1) सब प्रजाओं का पालन करने वाले हैं; (2) पवित्र पदार्थों को प्राप्त कराने वाले हैं; तथा (3) पालक व पूरक हैं और सबको तृप्त करने वाले व चाहने योग्य हैं।

88. अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वक्तृबर्हिषे।
असि होता न ईड्यः।।साम0 792

उपदेशः जितना–जितना हम दिव्य गुणों को अपनाते चलते हैं,

उतना–उतना प्रभु के समीप पहुँचते जाते हैं–ये एक–दूसरे के लिए सहायक हैं। दिव्य गुणों की प्राप्ति व प्रभु का सान्निध्य ये दोनों बातें साथ–साथ चलती हैं।

89. यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत्।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम्।।

साम0 884

उपदेश : वेद मन्त्रों के उच्चारण में भी एक आनन्द है, वेदाध्ययन से प्रेरणा प्राप्त होती है। धीरे–धीरे वह ज्ञान प्राप्त होता है जो हमारे मन को विवेकशील बना देता है तथा सत्य व यज्ञों का हम में पोषण करता है।

90. अभ्यर्ष बृहद्यशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम्।
इषं स्तोतृभ्य आ भर।। साम0 971

उपदेश : अपयश मनुष्य को निराश व हताश कर देता है, अतिशय कुछ अभिमान की ओर ले जाता है और मर्यादित यश उत्साह द्वारा बृद्धि का कारण बनता है। हे प्रभु! हमें मर्यादित यश प्राप्त कराइये।

निर्धनता मनुष्य को नाश व पाप की ओर ले जाती है, अतिधन 'अहंकार व विषयों' की ओर।

मर्यादित धन मनुष्य को धर्म के मार्ग में स्थिर करता है। यही स्थिर धन है। हे प्रभु! हमें स्थैर्यवाले धन को ही प्राप्त कराइये।

91. इन्दो यथा तव स्तवो यथा ते जातमन्धसः।
नि बर्हिषि प्रिये सदः।। साम0 976

उपदेश : हृदय में जो बात होती है बारम्बार उसी का ध्यान और उसी का चिन्तन चलता है। हृदय में प्रभु होंगे तो प्रभु का स्तवन चलेगा। प्रभु के स्थान में धन होगा तो धन कमाने के उपाय ही सोचते रहेंगे।

प्रभु के अन्न से उत्पन्न मन पर प्रभु का ही तो अधिकार होना चाहिए। मन तो हमने प्रिय, सुन्दर व निर्वासन इसीलिए बनाया है कि वहाँ पर प्रभु विराजमान हों। आइये! हमारा मन प्रभु का ही आसन बने।

92. यास्ते धारा मधुश्चुतो ऽ सुग्रमिन्द ऊतये।
ताभिः पवित्रमासदः।। साम0 979

उपदेश : वेद वाणी हमारे जीवन को मलिन होने से बचाती है। इसके लिए वेद कहता है – (1) प्रभु का स्तवन करो, मिलकर चलो, (2) अन्न-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करो, परन्तु उत्तम मार्ग से ही अर्जन करो, (3) प्रभु को प्रकाश के लिए हृदय में बिठाइए, भद्र शब्दों को ही सुनिए-निन्दात्मक शब्दों को नहीं, और (4) वाचस्पति बनों-कम खाओ, कम बोलो तथा सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखो।

93. त्वं सोम परि स्त्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः।
वरिवोविद् घृतं पयः।। साम0 981

उपदेश : प्राणसाधना के मार्ग को अपनाने पर साधक को, चित्तवृत्ति की एकाग्रता के अनुपात में, उस रसमय प्रभु के रस का अनुभव होने लगता है। हमारे जीवनों में एक दिन वह आता है, जब हमारे लिए प्रभु-चिन्तन ही स्वादिष्ट व मधुरतम हो जाता है। वे प्रभु ही हमें 'नैर्मल्य (विषय वासना से रहित होना), दीप्ति (प्रकाश, चमक) व आप्यायन (संतुष्टि, तृप्ति) प्राप्त कराते हैं।

आइये! हम प्राणसाधना द्वारा उपासना से प्रभु-भक्ति के रस का पान करें।

94. ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम्।।
साम0 1007

उपदेश : वेदों का अध्ययन हमें जितेन्द्रिय बनाता है-इन्द्रियों का दास न बनाकर हमें मोक्ष-लाभ कराता है। वेदवाणियों के अध्ययन से (1) हमें पता लग जाता है कि सब शक्ति प्रभु की है, अतः मनुष्य को गर्व नहीं होने पाता, (2) हम प्रभु के व्रतों को अपने जीवन में अनूदित करते हैं और (3) स्वराज्य- पूर्ण जितेन्द्रियता को अपना लक्ष्य बनाते हैं।

95. शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः।
पवन्ते वारे अव्यये।। साम0 1035

उपदेश : कर्मेन्द्रियाँ मानव हितकारी यज्ञों में प्रवृत्त रहती हैं।

जब मनुष्य अपने जीवन में सब भौतिक क्रियाओं को सूर्य और चन्द्र की भाँति नियमितता से करता है, तब वह आहार द्वारा शरीर में उत्पन्न सोम को शरीर में ही सुरक्षित करने में समर्थ होता है और इस सुरक्षित सोम से उसका शरीर कान्ति-सम्पन्न हो उठता है। इस सोम का विनियोग ज्ञानाग्नि के ईंधन के रूप में होता है और जब तक यह ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति में विनियुक्त हुआ रहता है तब तक शुद्ध व पवित्र बना रहता है- इसे वासनाएँ कलुषित नहीं कर पातीं। इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान में विनियुक्त सोम प्रभु का दर्शन कराने वाला होता है।

96. स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान्।
चारुर्मित्रे वरुणे च।। साम0 1083

उपदेश : पार्थिव भोगों की लिप्सा से ऊपर उठने के लिए प्राण साधना ही एकमात्र उपाय है। इस प्राणसाधना के लाभ निम्न हैं: (1) हमारा जीवन मधुर बनता है, हमारे मनों में ईर्ष्या-द्वेष नहीं रहते, (2) हम ज्ञान रूप उत्कृष्ट ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले होते हैं, (3) हमारी प्राणशक्ति ठीक होने से हम क्रियाशील बने रहते हैं

– हमें आलस्य नहीं घेरता और (4) हमारा अंग–प्रत्यंग सुपुष्ट बना रहता है।

97. आपानासो विवस्तवो जिन्वन्त उषसो भगम्।
सूरा अण्वं वि तन्वते।। साम0 1123

उपदेश : सोमपान से – वीर्य शक्ति को शरीर में ही सुरक्षित रखने से शरीर तो सुदृढ़ बनता ही है, इन्द्रियों की शक्ति के विकास के साथ बुद्धि भी सूक्ष्म बनती है और उस सूक्ष्म बुद्धि से आत्मतत्त्व का दर्शन होता है एवं सोमपान करने वाले लोग बौद्धिक व आत्मिक शक्तियों का विकास करते हैं। ये अपने अन्दर सूर्य के ऐश्वर्य को प्रेरित करते हैं, अर्थात् प्राणशक्ति को बढ़ाते हैं। 'प्राणः प्रजानामुदयत्येषः सूर्यः' यह सूर्य का उदय होता है, यह तो प्रजाओं का प्राण ही है। उषा का ऐश्वर्य अन्धकार का दहन है। यह तम को दूर करती है एवं सोमपान से मानस अन्धकार दूर होकर राग–द्वेषादि दूर हो जाते हैं।

98. समी वत्सं न मातृभिः सृजता गयसाधनम्।
देवाव्यां ३ मदमभि द्विशवसम्।। साम0 1158

उपदेश : हम अपनी नैत्यिक चर्या में प्राणायाम को अवश्य स्थान दें। प्राणसाधना मनोनिरोध का मूल है और इस प्रकार उन्नति की नींव है। प्राणसाधना से ही आसुर वृत्तियों का संहार होकर हममें दिव्य गुणों का वर्धन होगा। आसुर वृत्तियों का आक्रमण व्यर्थ हो जायेगा तो जीवन में उल्लास आएगा ही।

मनुष्य की दो शक्तियाँ 'ज्ञान और कर्म' है। हम अपने जीवन में ज्ञान और कर्म का समन्वय करने वाले बनें। ज्ञानपूर्वक किये गये कर्म ही पवित्र होते हैं और कर्मों में लगे रहना ही ज्ञान के आवरण "काम" को नष्ट करने का मुख्य साधन है।

99. यत्ते दिक्षु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत्।
तेन दृढा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये।। साम0 1174

उपदेश : प्रभु-प्राप्ति तभी होती है जब मनुष्य संसार में इधर-उधर भटकना छोड़, एकाग्रवृत्ति होकर प्रभु का ध्यान करे। इधर-उधर भटकना तब समाप्त होगा जब वह अपने अज्ञान को समाप्त कर लेगा। इस अज्ञान का नाश तब होगा जब हम वेदज्ञान को अपनाएँगे। यह वेदज्ञान मननीय है, हमारी वृद्धि का कारण है, हमें सफल बनाने वाला है। इस ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानान्धकार के निवृत्त होने पर यह प्रभुभक्त भौतिक पदार्थों का दास नहीं रहता। इसके तीनों दु:ख दूर हो जाते हैं। यह आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक शान्ति प्राप्त करता है।

100. इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय।
देवानां योनिमासदम्।। साम0 1180
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः।
अनु विप्रा अमादिषुः।। साम0 1181

उपदेश : प्रभु के स्वागत के लिए प्रभु प्राप्ति की प्रबल इच्छा और पवित्रीकरण आवश्यक है। यह प्रबल इच्छा व पवित्रीकरण सोम की रक्षा से ही संभव है।

जो भी मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान-प्राप्ति में तथा कर्मेन्द्रियों को यज्ञादि कर्मों में सदा लगाये रखता है, वह वासनाओं से बचा रहता है और परिणामत: उसके सोम में वासनाजन्य उबाल न आकर पवित्रता बनी रहती है एवं सोम की पवित्रता के लिए कर्मों में लगे रहना आवश्यक है।

101. देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः।
सं गोभिर्वासयामसि।। साम0 1182

उपदेश : सोम की रक्षा से हमारे मनों की अपवित्रता नष्ट होती है और हमें दिव्य गुण प्राप्त होते हैं। हमारी देवी सम्पत्ति (कल्याणकारी गुण) बढ़ती है और जीवन में उत्तरोत्तर एक विशेष हर्ष व उल्लास का अनुभव होता है, एक अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति होती है।

सोम की रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। इस सोम को शरीर में ही सुरक्षित रखने का उपाय वेदवाणियों का स्वीकरण है। हम वेद-वाणियों का अध्ययन करेंगे तो सोम का शरीर में व्यापन सुगम हो सकेगा। सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर शरीर का अंग बना रहता है।

102. अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः।
सोमो हिन्वे परावति।। साम0 1204

उपदेश : जितना-जितना हम अपना जीवन वेदवाणी के अनुसार बनाएँगे, उतना-उतना ही हमारा जीवन परिष्कृत होता जायेगा। हमारी न्यूनताएँ दूर हो जाएँगी और हम अधिकाधिक क्रान्तदर्शी बनेंगे। ऐसा बनने पर हम द्युलोक के उत्कृष्ट लोकों में जन्म लेने वाले होंगे और क्रमशः ब्रह्मलोक की ओर बढ़ रहे होंगे।

आइये! अपने जीवन को वैदिक जीवन बनायें और उत्कृष्ट लोकों में जन्म लेने वाले बनें।

103. एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वभिः।
पवमानः सिषासति।। साम0 1258

उपदेश : यह प्रभु की उपासना करने वाला जीव कामादि सब अशुभ वृत्तियों की हिंसा करने वाला होता है। यह सदा सात्त्विक वृत्तियों के साथ गति करता है। रजोगुण व तमोगुण को अभिभूत करके इसमें सत्त्वगुण प्रबल होता है। यह अपने जीवन को पवित्र करने के स्वभाव वाला होता है। इसका जीवन उत्तरोत्तर पवित्र होता

जाता है। पवित्र जीवन वाला होकर यह वरणीय वस्तुओं को पाना चाहता है। वह अवांछनीय वस्तुओं की कामना से ऊपर उठ जाता है।

104. एष देवो विपन्युभिः पवमानः ऋतायुभिः।
हरिर्वाजाय मृज्यते।। साम0 1260

उपदेश : आत्मा 'देव' है–चित्त होने से ज्ञानमय है, यह पवमान–पवित्र है, परन्तु प्रबल इन्द्रिय–समूह इसे विषयों में हर ले जाता है तो यह मलिन–सा हो जाता है।

जब जीव यह चाहता है कि उसे शक्ति व ज्ञान प्राप्त हो, अर्थात् उसका शरीर सशक्त हो तथा उसका मस्तिष्क ज्ञान से परिपूर्ण हो–तब वह अपना शोधन करता है–विषयपङ्क से अपने को निकालने का प्रयत्न करता है। विषयपङ्क से निकलने के उपाय यही हैं कि (1) मनुष्य प्रभु का विशेष रूप से स्तोता हो तथा (2) वह सत्य व नियमितता को अपने जीवन में लाने के लिए यत्नशील हो।

105. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः।
हरिः पवित्रे अर्षति।। साम0 1264

उपदेश : जीवात्मा यदि एक शरीर में अपनी साधना पूर्ण न करके शरीरान्तर को धारण करता है तो यह जीवन के अत्यन्त शैशवकाल से ही (From the very early childhood) दिव्य गुणों वाला होता हुआ–मानों दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए ही उत्पन्न हुआ–हुआ सभी के दु:खों को हरण करने की वृत्ति वाला–पवित्र प्रभु में गति करता है।

पिछले जन्म के संस्कार उसे फिर से इस दिव्य मार्ग पर आगे बढ़ाते हैं। इसका जन्म ही दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए हुआ

लगता है। यह सदा उस प्रभु में विचरता है और यथासम्भव औरों के कष्टों को कम करने की प्रवृत्तिवाला होता है।

106. एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणेष्वायवः प्रचक्राणं महीरिषः।।

साम0 1268

उपदेश : अन्त:स्थित प्रभु सदा उत्तम प्रेरणाएँ दे रहे हैं। यह हमारा दौर्भाग्य है कि हम उन्हें सुनते ही नहीं। गतिशील पुरुष ही अन्त:स्थ प्रभु का साक्षात्कार करते हैं और उसकी वाणी को सुन पाते हैं। यहाँ- शरीर में ही उस प्रभु का दर्शन होना है। शरीर को द्रोण कहा है, क्योंकि यही इन्द्रियों, मन व बुद्धि का आधार है; जैसे कि द्रोणपात्र पानी आदि का आधार बनता है अथवा सारी गति इस शरीर में ही होती है, इसलिए भी इसे 'द्रोण' कहा है। जब मनुष्य का झुकाव प्रभु की ओर होता है तब वह प्रभु की महनीय प्रेरणाओं को सुनता है।

107. एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः।। साम0 1269

उपदेश : प्रभु-प्राप्ति आत्मशुद्धि से होती है। आत्मशुद्धि दान देने से भी होती है। दान "व्यसनवृक्ष" के मूलभूत लोभ को नष्ट कर देता है और इस प्रकार मनुष्य को शुद्ध मनोवृत्ति वाला बनाता है। यह शुद्ध मनोवृत्ति वाला पुरुष ही प्रभु के दर्शन कर पाता है। प्रभु तो हृदय के अन्दर ही वर्त्तमान हैं। हृदय की मलीनता उसका दर्शन नहीं होने देती। हृदय शुद्ध हुआ और दर्शन हुआ।

108. एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।
इन्दुमिन्द्राय पीतये।। साम0 1275

उपदेश : प्रभु प्राप्ति के लिए दो बातें आवश्यक हैं (1) काम, क्रोध, लोभ का नाश करना और (2) प्रभु प्राप्ति का दृढ़-संकल्प।

दृढ़ संकल्प के बिना कामादि का नष्ट करना भी कठिन है।

दृढ़ संकल्प द्वारा प्रभु को प्राप्त करने वाला अपने ही आनन्द के लिए किसी पर्वत-कन्दरा में एकान्त स्थान नहीं ढूंढ़ता। यह मनुष्यों में ही विचरता है। वहाँ रहते हुए यह सदा क्रियाशील बनता है, लोकहित में लगा रहता है और इसकी ये सब क्रियायें अत्यन्त प्रशस्त होती हैं। यह मानव प्रजा के हित करने में एक आनन्द का अनुभव करता है।

109. येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।
तेन सहस्त्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः।।साम0 1302

उपदेश : वेद, ज्ञान की वाणियों से परिपूर्ण हैं। ये ज्ञान की वाणियाँ 'पावमानी'= पवित्र करने वाली हैं। जैसे जलों की शतशः धारायें हमारे बाह्य मलों को धो डालती हैं, इसी प्रकार वेद की ये ज्ञानात्मक धाराएँ हमारे अन्तःकरणों को शुद्ध कर डालें। ज्ञान ही पवित्र है। ये ऋचाएँ ज्ञान से परिपूर्ण हैं, अतः ये सचमुच 'पावमानी' हैं।

110. पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्।
पुण्याँश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति।।
साम0 1303

उपदेश : हमारे जीवनों को पवित्र करने वाली वेद की ऋचाएँ हमें उत्तम मार्ग से ले चलने वाली हैं। इनका अध्ययन हमें ऐसी प्रेरणा देता है कि हम अशुभ मार्गों को छोड़कर शुभ मार्ग पर ही चलते हैं। इन ऋचाओं के द्वारा मनुष्य परमानन्द के धाम प्रभु को प्राप्त करता है। शुभ मार्ग पर चलता हुआ अन्त में प्रभु के समीप पहुँचता ही है। संक्षेप में वेदाध्ययन के लाभ निम्न हैं :-

(1) पवित्रता (2) शुभ मार्ग से चलना (3) प्रभु के आनन्द धाम को प्राप्त करना (4) सात्त्विक भोजन के सेवन की

रुचि और (5) मोक्ष–प्राप्ति तथा असमय में मृत्यु का न होना।

111. कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।
जामि ब्रुवत आयुधा।। साम0 1308

उपदेश : इस जीवन–यात्रा में मेधावी लोग सदा प्रभु से अपना मेल बनाये रखते हैं। स्तुतियों के द्वारा उसे सदा अपने हृदय की आँखों के सामने रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके सब उत्तम कार्य निर्विघ्न पूर्ण होते हैं और उन पर वासनाओं का आक्रमण कभी नहीं होता। प्रभु का नाम ही वह महान् अस्त्र होता है जो उनके शत्रुओं को नष्ट कर देता है। शत्रुओं के नाश के लिए अन्य सब अस्त्र–शस्त्र व्यर्थ सिद्ध होते हैं। बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम स्तवन के द्वारा प्रभु को ही अपने यज्ञों का साधक बनायें।

112. द्विर्यं पञ्च स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम्।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊमर्यः।। साम0 1330

उपदेश : हमारे शरीर में हमारी इन्द्रियाँ वश में हों तो हमारी मित्र हैं, वश में न हों तो ये हमारी शत्रु हैं। ये ज्ञान का प्रकाश देने वाली इन्द्रियाँ मनुष्य को शुद्ध कर डालती हैं। ये उसकी मित्रभूत होती हैं। जैसे संसार में एक सच्चा सखा अपने मित्र के जीवन को पाप से निवारित करके तथा पुण्य से जोड़कर पवित्र कर डालता है, उसी प्रकार ये इन्द्रियाँ भी मनुष्य को शुद्ध करने के कारण उसकी सखा हैं।

जिसकी इन्द्रियाँ वश में होती हैं अर्थात् जिसको शुद्ध कर डालती हैं –

(1) वह आत्मा के सौन्दर्यवाला होता है, आत्मा की ओर झुकाव वाला होता है, आत्मा को ही अपनी सम्पत्ति समझता है, आत्मिक भोजन को महत्त्व देता है।

(2) वह दिन में कम से कम दो बार प्रातः सायं आदरणीय प्रभु से अपने को जोड़ने वाला है, प्रातः सायं प्रभु का ध्यानकरने वाला ही जितेन्द्रिय बन पाता है, उसी की इन्द्रियाँ उसकी मित्र होती हैं और उसके जीवन को प्रकाश से उज्जवल बनाती चलती हैं।

(3) वह सदा प्रसन्नता का अनुभव करता है, आत्मिक भोजन से तृप्ति का लाभ करता है।

(4) वह उस प्रभु की प्राप्ति की कामनावाला है, उसके जीवन की मुख्य कामना प्रभु-प्राप्ति है।

113. इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे।। साम0 1331

उपदेश : सोमरक्षण करने वाला व्यक्ति सदा सरल मार्ग से चलता है। यह सोमरक्षण के लिए निम्न बातें करता है -

(1) जितेन्द्रिय बनने का प्रयत्न करता है।
(2) वासनाओं को विनष्ट करता है।
(3) आगे बढ़ने की वृत्ति को धारण करता है।
(4) दानशील बनता है।
(5) वीर बनता है।
(6) यज्ञशील बनता है।

ये बातें सोमरक्षण के होने पर हममें फूलती-फलती हैं।

114. चश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।
उग्रं तत् पतत्यते शव इन्द्रो अङ्ग।। साम0 1342

उपदेश : सामान्यतः संसार में ऐश्वर्य पाकर कोई बिरला पुरुष ही यज्ञमय प्रवृत्ति वाला बनता है। भोगों में लिप्त होकर मनुष्य लोकहित को अपने जीवन का ध्येय नहीं बना पाता, परन्तु यदि एक-आध व्यक्ति ऐश्वर्य प्राप्त कर लोकहित करता हुआ यज्ञमय जीवन

बिताता है तो वह वस्तुतः प्रभु का सच्चा उपासक होता है।

प्रभु की उपासना लोकहित के द्वारा ही होती है। इस लोकहित में लगे हुए प्रभु के उपासक को 'उग्र शक्ति' प्राप्त होती है। इस उग्र शक्ति के द्वारा सब विघ्न-बाधाओं को जीतता हुआ वह अपने मार्ग पर आगे बढ़ता चलता है।

115. यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति।। साम0 1345

उपदेश : हम जितना-जितना साधना के मार्ग पर आगे बढ़ते चलेंगे, उतना ही हमें अपना कर्त्तव्य-पथ स्पष्ट दिखेगा। यह इन्द्रियवृत्तियों को आत्मवश्य करने वाला आत्मा वस्तुतत्त्व को ठीक-ठीक जानता है। संसार की वास्तविकता को समझने के लिए भी योगमार्ग पर चलना आवश्यक है। इस मार्ग पर चले बिना हम आत्मा और अनात्मा के, अशुचि और शुचि के, अनित्य और नित्य के और सुख व दुःख के स्वरूप में विवेक नहीं कर पाते। इस वस्तुतत्त्व को जानकर यह साधक शक्तिशाली होता हुआ तथा सब पर सुखों की वर्षा करने वाला बनकर जनसमूह के साथ ही गति वाला होता है। यह लोगों से दूर भागने का विचार नहीं करता। लोगों में ही रहता हुआ उनके अज्ञान व दुःख को दूर करने के लिए यत्नशील होता है।

116. सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते।
होतः पावक यक्षि च।। साम0 1347

उपदेश : सत्संग से सद्गुणों का जन्म होता है, परन्तु यह सत्संग भी तो प्रभुकृपा से ही प्राप्त होता है। हम प्रभु के प्रति अपना अर्पण करें-हविष्मान बनें और वह प्रभु हमारे अन्दर 'सु-समिद्ध' हों। जैसे अग्निकुण्ड में अग्नि को दीप्त किया जाता है, उसी प्रकार हम

अपने अन्दर प्रभु को दीप्त करने का प्रयत्न करें, प्रभु का ध्यान करें, उसकी ज्योति को देखने का प्रयत्न करें और उसके प्रति अपना अर्पण कर डालें (हविष्मान्)। प्रभु सत्संग द्वारा हमें देव बना देंगे।

117. सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।
ये नो अहोऽ तिपिप्रति।। साम0 1352

उपदेश : जो भी व्यक्ति पाप से दूर होने का निश्चय करते हैं, वे अपनी इस जीवन–यात्रा में सदा उत्तम दान देने वाले बने रहते हैं और इस उपाय के द्वारा अपने घर को पापों व कष्टों से बचाये रखते हैं।

पापों से पार होने की कामना होनी चाहिए, दान देना चाहिए और अपने घर को अशुभों व कष्टों से बचाना चाहिए। "दान" शब्द के तीनों ही अर्थ हैं–देना, पापों का काटना और अपना शोधन। 'वसिष्ठ' सदा दान की वृत्ति को अपनाता है, क्योंकि दान की विरोधी भावना 'लोभ' है जो सब व्यसनों का मूल है। लोभ से काम–क्रोध पनपते हैं और मनुष्य अधिकाधिक विषयासक्त हो जाता है।

118. स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः।
उतास्मान् पात्वंहसः।। साम0 1381

उपदेश : प्राकृतिक धन सदा मनुष्य के साथ नहीं रहता–यह तो आता जाता रहता है और मृत्यु के समय यहीं रह जाता है, परन्तु ज्ञान रूप धन सदा हमारे साथ रहता है, यह मरण के समय भी हमारा साथ न छोड़कर हमारे साथ ही जायेगा, अतः यह ज्ञानरूप धन 'अमात्यं वेदः' कहा गया है। प्रभु हमारे इस ज्ञान–धन की रक्षा करें, क्योंकि इस धन के होने पर अन्य धन तो प्राप्त हो ही जायेंगे

और इसके अभाव में होते हुए धन भी नष्ट हो जाएँगे। इसके अतिरिक्त ज्ञान न होने पर मनुष्य अपवित्र मार्गों से भी धन कमाने लगता है। ज्ञानाग्नि हमारे जीवन को पवित्र बनाये रखती है। ज्ञान होने पर हम सुपथ से ही धनार्जन करेंगे। सुपथ से धनार्जन करने पर हमारे जीवनों में शान्ति होगी और हम उन्नति के मार्ग पर बढ़ रहे होंगे।

119. सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने।
ऋतेन य ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत्।।
साम0 1395

उपदेश : मनुष्य पुण्य कर्मों से उच्च लोकों में जन्म लेता है और पापकर्मों से अधोलोकों में। पुण्यकर्मा व्यक्ति उत्कृष्ट लोकों में घर वाला बनता है। हीनाकर्षण से ऊपर उठा होने के कारण, शक्तिशाली बना रहता है और सर्वशक्तिमान प्रभु का स्तवन करता है।

इस प्रभु का स्तवन हम इसलिए करें कि हमें देवलोक में जन्म मिले, पवित्र व सम्पन्न घरों में जन्म लें। प्रभु–स्तुति का अन्तिम परिणाम तो मोक्ष–प्राप्ति ही है, परन्तु उस मार्ग पर चलने से हम लक्ष्य पर नहीं भी पहुँचते तो उत्कृष्ट लोकों में तो जन्म होता ही है।

120. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः।
त्वया यज्ञं वि तन्वते।। साम0 1407

उपदेश : सामान्यतः धीरता की न्यूनता के कारण और श्रेयमार्ग की उपेक्षा से जीव प्रकृति का वरण करता है, परन्तु जब उसके पाँवों तले रौंधा जाता है तब अनुभव करता है कि वरणीय तो प्रभु थे, मैंने वरण किया प्रकृति का।

प्रकृति को अपनाने का परिणाम 'स्वार्थ' की वृद्धि है–मनुष्य

में स्वार्थ बढ़ता जाता है। प्रभु को अपनाने से यज्ञीय वृत्ति बढ़ती है और स्वार्थ उत्तरोत्तर क्षीण होता जाता है। स्वार्थ की वृत्ति ''चार दिन की चाँदनी के बाद अँधेरी रात'' को ले आती है और यज्ञीय वृत्ति उत्तरोत्तर प्रकाश को बढ़ाने वाली होती है।

121. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः।
स यन्ता शश्वतीरिषः।। साम0 1415

उपदेश : मानव–हृदय में वासनाएँ सदा से उमड़ रही हैं–इनका नियन्त्रण वही व्यक्ति कर पाता है जो प्रभु–रक्षण प्राप्त करता है वही प्रभु कृपा से ज्ञान व शक्ति पाता है। इन कामादि से संग्राम में विजय पाना मानवशक्ति से परे की बात है, यह तो प्रभु कृपा से ही प्राप्त होती है। इन वासनाओं का नियमन करके मनुष्य अपने जीवन को शान्त व सुखी बना पाता है। अतः सुख का निर्माण करने वाला कहलाता है।

122. पवस्य वृष्टिमा सु नोऽ पामूर्मिं दिवस्परि।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः।। साम0 1435

उपदेश : वैदिक संस्कृति का एक सिद्धान्त है जिसे सामान्य भाषा में ''जैसा अन्न वैसा मन'' कहा गया है। आहार की शुद्धि होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है। अन्तःकरण की शुद्धि में अपने स्वरूप व लक्ष्य का स्मरण रहता है और स्मृति रहने पर वासना–ग्रन्थियों का विनाश हुआ करता है। इसलिए वेद में शरीर को रोगों से आक्रान्त न होने देने वाले स्वास्थ्यप्रद तथा वृद्धि के कारणभूत–हृदय को विशाल बनाने वाले सात्त्विक अन्न की प्रार्थना की गई है।

123. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि।। साम0 1468

उपदेश : योगमार्ग पर चलने वाले पुरुष (युज्जान पुरुष) महान दीप्त मन को महान दैदीप्यमान प्रभु में लगाते हैं। यह मन महान है इसमें तो सन्देह का प्रश्न ही नहीं। यह बन्ध व मोक्ष दोनों का ही कारण है। अत्यन्त चंचल होकर बन्ध का कारण बनता है तथा देदीप्यमान व क्रोध-शून्य होकर मोक्ष को प्राप्त कराता है। विषयों में भ्रमण करता है तो बन्ध का कारण होता है-विषयों से ऊपर उठता है तो मोक्ष प्राप्त कराता है। इस प्रकार मन को विषयों से हटाकर प्रभु में जोड़ने वाले युज्जान लोग चमकने वाले होते हैं-उनके चेहरों पर ब्रह्मदर्शन का उल्लास दिखता है। वे लोग मोक्षसुख का लाभ करते हैं।

124. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा।। साम0 1469

उपदेश : मनुष्य का यह शरीर रथ है-इस रथ में ज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय रूप दो घोड़े जुते हैं। ये घोड़े अत्यन्त चंचल हैं। इन्द्रियों की चंचलता लोकसिद्ध है। ये धर्षण करने वाले हैं-कुचल डालने वाले हैं। ये मथ डालने वाली हैं। ये मनुष्यों को इधर-उधर ले जाने वाली हैं। बलात् मन को हर ले जाती हैं और न जाने कहाँ-कहाँ भटकती हैं।

युज्जान लोग शरीर रूप रथ को आगे और आगे ले जाने वाले इन इन्द्रियाश्वों को, इस प्रभु की कामना वाला बनाकर तथा विशिष्ट ज्ञान व कर्म का परिग्रह करने वाला बनाकर, इस शरीर रूप रथ में ही जोड़ते हैं। सामान्यतः ये घोड़े प्रभु की कामना न करके विषयों की कामना वाले हो जाते हैं और उन्हीं में विचरते रहते हैं। ज्ञान व यज्ञों के परिग्रह की बजाय ये विषयों का ही स्वाद लेते रहते हैं। रथ को आगे ले चलने के स्थान में चरने में मस्त रहते

हैं। शंत वैश्वानस लोग इन्हें रथ में जोतकर यात्रा को पूरा करने का ध्यान करते हैं।

यह यात्रा कोई सुगम व संक्षिप्त–सी तो है ही नहीं–यह तो निरन्तर आगे बढ़ते रहने से ही पूरी होगी। इस तत्त्व को समझकर इन इन्द्रियाश्वों का रथ में जोतना ही श्रेयस्कर है।

125. आर्दीं के चित् पश्यमानास आप्यं वसुरुचो दिव्या अभ्यनूषत।
दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते।। साम0 1495

उपदेश : आत्मतत्त्व की ओर विरले पुरुष की ही प्रवृत्ति होती है। प्रभु–दर्शन की प्रबल इच्छा होने पर यह व्यक्ति अपने में श्रद्धा व ज्ञान का विकास करने के लिए सतत प्रयत्नशील होता है क्योंकि इनके बिना प्रभु–दर्शन सम्भव नहीं ? यह अनुभव करता है कि प्रभु ही मेरे लिए प्राप्त करने योग्य हैं। यह कहता है कि –

मैं एकमात्र प्रभु को ही अपनी शरण अनुभव करूँ। इसे अनुभव होता है कि वे प्रभु ही वसु हैं–मेरे उत्तम निवास के कारण हैं। प्रभु की दिव्य कान्तियों को देखता हुआ यह गद्गद हो उठता है और सहज ही प्रभु के स्तवन में प्रवृत्त होता है।

126. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य।। साम0 1499

उपदेश : ज्ञान सर्वोत्तम धन है, बल मध्मय धन है और रुपया–पैसा सबसे निचले दर्जे का धन है। धन्य मनुष्य वही है जो ज्ञान, बल व धन तीनों से ही युक्त है। ज्ञान 'ब्राह्मणत्व' का प्रतीक है, बल 'क्षत्रियत्व' का तथा धन 'वैश्यत्व' का। इस प्रकार उत्तम, मध्यम व अन्तम धनों को प्राप्त करके हम अपने जीवन को अधिक से अधिक सुखी बना पाते हैं। यह ठीक है कि –'हैं ये भी बन्धन ही'। ज्ञान का बन्धन सात्त्विक है, बल का बन्धन राजस तथा धन का

बन्धन तामस्। इन तीनों बन्धनों में बन्धा हुआ भी यह अपने जीवन को सुखी बनाने में समर्थ होता है।

127. यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिर्नमस्यत।।

साम0 1516

उपदेश : जब मनुष्य यह समझ लेता है कि चमकता वही है, जो उत्तम कर्म करता है या प्रभु-स्तवन में लगता है। तब वह इस जीवन को भोग भोगने की भूमि नहीं समझता। वह जीवन को कर्मभूमि समझता है और निश्चय करता है कि उसे इस जीवन में पवित्र वस्तुओं का सम्पादन करना है। उसके दृष्टिकोण में जीवन 'मेधसाति' है। पवित्र वस्तुओं की प्राप्ति के निमित्त ही वह प्रज्ञानों व कर्मों से प्रभु की उपासना करता है। इस प्रकार जीवन को उत्तम प्रज्ञानों, कर्मों व उपासना में बिताता हुआ यह व्यक्ति सो भीर (देवता) बनता है।

128. यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या।
तां नो हिन्व मघत्तये।। साम0 1528

उपदेश : जब मनुष्य संसार में प्रकृति को अपना आराध्य देवता न बनाकर प्रभु को अपना आराध्य बनाता है तब वह प्रभु के द्वारा 'सेन' (स+इन) सेश्वर=स्वामी वाला होता है। इसे प्रभु का संरक्षण प्राप्त होता है। इस संरक्षण को प्राप्त करके यह ऊँचे-से-ऊँचा ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान की किरणों को प्राप्त करने वाला यह 'केतु' कहलाता है (केतु=A ray of light)। इस ज्ञान को प्राप्त करके यह कभी कुपथ से धन नहीं कमाता। सदा सुपथ से धनार्जन करता हुआ उस धन का दान करता है। इसके जीवन का सूत्र ''दान पूर्वक उपभोग' होता है।

हम भी धन को सदा सुमार्ग से कमाएँ और सदा उसका दान करने वाले हों।

129. उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः।
अग्ने शुक्रास ईरते।। साम० 1541

उपदेश : जब भक्त प्रकाशस्वरूप प्रभु को अपनी हृदय-स्थली में दीप्त करने में समर्थ होता है तब यह हृदय-स्थली ज्ञान की किरणों से जगमगा उठती है। वे ज्ञान की ज्वालाएँ शुद्ध होती हैं और हमारे जीवन की वृद्धि का साधन होती हैं। हृदय में इन ज्ञान ज्वालाओं के प्रकाशित होने पर उनका प्रतिक्षेप इस भक्त के चेहरे पर भी व्यक्त होता है। यह सामान्य पुरुषों से अधिक दीप्त-वदन वाला प्रतीत होता है। यह अपने जीवन में एक विशेष शक्ति का अनुभव करता है और अंग-प्रत्यंग में शक्तिशाली होने के कारण 'आङ्गिरस' होता है। यह चेहरे से ही 'ब्रह्मवत्'- सा लगने लगता है।

130. पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे।।
साम० 1545

उपदेश : प्रभु स्मरण से हमारा जीवन निम्न प्रकार का बनता है -

(1) हमें अपने आनन्द के लिए औरों की हानि का कभी विचार ही नहीं होता।

(2) हम लोकहित के सब कार्यों के लिए दान करते हुए यज्ञशेष ही खाते हैं।

(3) लोभादि शत्रुओं से हम पराजित नहीं होते।

(4) हममें व्यसन वृक्ष का मूल 'लोभ' के नाश से दिव्य गुणों का विस्तार होता है।

(5) सब दृष्टिकोणों से हमारी वृद्धि-ही-वृद्धि होती है।

इस प्रकार अपने जीवन में हम परिपक्व होते हैं–हमारे जीवन का ठीक विकास होता है।

131. पदं देवस्य मीढुषो ऽ नाधृष्टाभिरूतिभिः।
भद्रा सूर्यइवोपदृक्।। साम0 1572

उपदेश : यदि मनुष्य मस्तिष्क को काम से धर्षणीय नहीं होने देता, हृदय को वासनाओं से बद्ध नहीं होने देता और शरीर को भोगों का शिकार न होने देकर शक्तिमय बनाये रखता है, तब वह प्रभु के पद को इस प्रकार देख पाता है जैसे हम सूर्य को स्पष्ट देखते हैं। यह सूर्य के समान प्रभु–दर्शन की स्थिति ही कल्याण व सुख से पूर्ण है। यही ''ब्राह्मीस्थिति'' है। इसे प्राप्त कर किसी प्रकार का मोह नहीं रह जाता। इसका जीवन उत्तरोत्तर दिव्यता को प्राप्त कर श्रेष्ठ व श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम बन जाता है। वह प्रभु से की जा रही सुखों की वर्षा का पात्र होता है।

132. उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये।
सुमृडीका भवन्तु नः।। साम0 1595

उपदेश : प्रभु की वेदवाणी अमृत–वाणी है, 'न ममार न जीर्यति'= यह न कभी मरती हे, न जीर्ण होती है। सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा के हृदयों में प्रकाशित की जाती है और उनके द्वारा सर्वत्र इसका प्रचार होता है।

प्रलय के प्रारम्भ में उसी प्रभुरूप कोश में यह फिर निहित हो जाती है। यह अजरामर वाणी जीव के हित के लिए सदा उपदिष्ट होती है।

133. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता।। साम0 1600

उपदेश : प्रभु का स्तोता बनने के लिए आवश्यक है कि हम –

(1) वीर हों – कामादि शत्रुओं को दूर भगाने वाले हों।
(2) कर्मों को इस प्रकार से कुशलता व समझदारी से करें कि हमें सफलता–ही–सफलता मिले।
(3) वेदवाणियों को धारण करने वाले बनें तथा
(4) हमारी समृद्धि प्रिय व सत्य हो – अर्थात् हम क्रूरता व अन्याय से धन जुटाने वाले न हों।

उपरोक्त चार बातें ही हमारे जीवन को सचमुच सुखी करेंगी।

134. तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः।
यं गाव आसभिदर्धुः पुरा नूनं च सूरयः।।साम0 1632

उपदेश : 'सोम' शरीर में सर्वोत्तम रक्षक है। यह शरीर को निरोग रखता है, मन को निर्मल करता है और बुद्धि को तीव्र बनाता है। वस्तुतः यह जीवन का आधार है।

विवेकशील पुरुष श्रेय और प्रेय का अन्तर समझकर सोम का विनियोग क्षणिक प्रेय के लिए न करके स्थायी श्रेय के लिए ही करता है और सोम की रक्षा में अत्यन्त सावधान हो जाता है। सोम की रक्षा यह 'ज्ञानेन्द्रियों के मुख' से ही कर पाता है अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों को सदा ज्ञान–प्राप्ति में लगाये रखकर ही सोम की रक्षा सम्भव होती है।

135. पन्यपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय।
सोमं वीराय शूराय।। साम0 1657
एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम्।
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम्।। साम0 1658

उपदेश : सात्त्विक भोजन के द्वारा वीर्य के शरीर में सुरक्षित होने पर इन्द्रियाँ ज्ञान से व ज्ञानपुञ्ज ब्रह्म से मेल कराने वाली होती है।

ये इन्द्रिय रूप घोड़े सचमुच सुख देने वाले होते हैं।

सोम रक्षा से सशक्त हुई-हुई इन्द्रियाँ जहाँ परमेश्वर से मेल कराकर निःश्रेयस को सिद्ध करती है, वहाँ सांसारिक कार्यों में सफलता प्राप्त करती हुई अभ्युदय को भी प्राप्त कराने वाली होती है। श्रेय व प्रेय दोनों की साधक ये इन्द्रियाँ अपने अधिष्ठाता जीव को वेदवाणियों के द्वारा, निज सखा प्रभु को प्राप्त कराती है।

136. मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता।।

साम0 1683

उपदेश : वस्तुतः धन कोई हेय व घृणित वस्तु नहीं है। हाँ, धन में आसक्त हो जाने वालों को धर्मज्ञान नहीं रहता। धन में असक्त को ही तो धर्म का ध्यान रहता है। अतः मनुष्य को धन तो कमाना ही चाहिए, परन्तु उसमें आसक्ति से ऊपर उठने के लिए सदा दान देते रहना चाहिए, दान का अर्थ 'देना' तो है ही, 'दान' का अर्थ 'खण्डन' भी है। यह दान सचमुच वृत्रादि वासनाओं का खण्डन करने वाला है।

धनों को पात्रों में दान देने वाले सदा उत्तम संग प्राप्त करते हैं। दान देने की वृत्ति से (1) विद्वानों का सम्पर्क प्राप्त होता है, (2) उनके उपदेशों के श्रवण से 'वेदज्ञान' मिलता है-प्रभु से प्रतिपादित वेदमार्ग का पता लगता है, (3) उस पर चलकर हमारे सब दुरित दूर हो जाते हैं।

137. इन्द्र स्थातर्हरीणां न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।
उदानशं शवसा न भन्दना।। साम0 1685

उपदेश : जितना महत्त्व जितेन्द्रियता का है, उतना न बल और तेज का और न ही शुभ कर्मों का है। वास्तविकता तो यह है कि

जितेन्द्रियता के बिना न तो मनुष्य बलवान् और तेजस्वी हो सकता है और न ही उसकी शुभ कर्मों में प्रवृत्ति होती है। इस सारी बात का विचार करके ही ऋषि दयानन्द ने जितेन्द्रियता को सदाचार में प्रथम स्थान दिया है। मनु ने इसे सिद्धि की प्राप्ति के लिए आवश्यक माना है–''सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छतिं।' जितेन्द्रियता वह केन्द्र है जिसके चारों ओर सदाचार के सब अंग घूमते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनुष्य जितेन्द्रियता को अपना मौलिक कर्त्तव्य समझे। ऐसा समझने पर ही तो वह इन्द्रियों का अधिष्ठाता बनकर विशिष्ट इन्द्रिय रूप अश्वों वाला बनेगा।

138. तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम्।। साम0 1686

उपदेश : यदि हम अपने जीवन में यज्ञों को अपनाएँगे तो सदा फूलें–फलेंगे। प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में हमें यज्ञ ही दिया था और यही कहा था कि यह तुम्हारी सब इष्ट–कामनाओं को पूर्ण करने वाला होगा।

यज्ञों के द्वारा 1. यश मिलता है 2. वृद्धि प्राप्त होती है और 3. शक्ति बढ़ती है।

यज्ञ की मौलिक भावना 'स्वार्थत्याग' है। स्वार्थ त्याग वाला व्यक्ति व्यापक मनोवृत्ति वाला होने से 'विश्वमना' है। यह यज्ञों में लगे रहने से उत्तम इन्द्रिय रूप अश्वों वाला बन कर ''वैयश्व'' कहलाता है।

139. विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीडिष्व यन्तुरम्।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम्।।
साम0 1688

उपदेश : मानव–जीवन के दो मुख्य सूत्र हैं–(1) अपना विशेष

रूप से पूरण करना–कमियों को दूर करना और (2) केवल अपने में ही न रमकर समाज का उत्तम ढंग से पोषण करना। इसी को यज्ञमय जीवन बिताना भी कहते हैं। इस प्रकार अपने जीवन को यज्ञमय बनाये रखने के लिए हमें प्रभु का स्मरण करना है।

उस प्रभु का प्रकाश हमें ज्ञान देने वाला है और वास्तव में तो वे प्रभु ही हमारी जीवन–यात्रा में हमारे रथ के सारथि होते हैं, बशर्ते कि हम उस प्रभु से मेल करने वाले हों तथा सदा सौम्य व विनीतवृत्ति रखते हों।

140. इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्।
साकमेकेन कर्मणा।। साम0 1704

उपदेश : मानव शरीर में काम–क्रोध आदि वासनाएँ न चाहते हुए भी प्रवेश कर जाती हैं। प्रविष्ट होकर ये उसका संहार करती हैं। संहार करने से इनका नाम 'दास' है। इन कामादि दासों की शक्तियाँ ही दास पत्नियाँ हैं।

प्राणापान की साधना से वासना–वृत्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं, परन्तु प्राणापान इस कार्य को तभी कर पाते हैं, जब ये प्रभु के साथ होते हैं–जब श्वासोच्छ्वास के साथ 'ओ३म्' का जप चलता है। यह वासना–विनाश कार्य तभी होता है जब हम प्रभु के समान निर्माणात्मक कार्यों में लगते हैं–प्रभु के समान पक्षपातादि की भावनाओं से ऊपर उठते हैं।

141. उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्मं ते वयम्।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः।। साम0 1706

उपदेश : मनुष्य संसार में नाना प्रकार के संघर्षों से व्याकुल हो जाता है। उस समय प्रभु के चरण ही उसके शरण होते हैं। सूर्य ताप से सन्तप्त व्यक्ति जैसे छाया–में शरण पाता है, उसी प्रकार

संसार-संघर्ष से व्याकुल हुआ पुरुष प्रभु के चरणों में शरण पाता है। संसार में कई बार हमारा जीवन अन्धकारमय हो जाता है-वे प्रभु ही दीप्त तथा ज्योतिर्मय हैं। उस प्रभु के दर्शन में मनुष्य प्रकाश को अनुभव करता है। प्रभु का दर्शन होते ही व्याकुलता समाप्त हो जाती है और यह उपासक एक शक्ति का अनुभव करता है।

142. अया निजाघ्नरोजसा रथसङ्गे धने हिते।
स्तवा अबिभ्यूषा हृदा।। साम0 1715

उपदेश : वस्तुतः प्रभु कृपा से हमें जीवन-यात्रा को पूर्ण करने के लिए यह शरीररूपी रथ मिला है। अन्य पशु-पक्षियों के शरीर भोग योनि हैं-वे शरीर 'रथ' नहीं हैं। अतः वे जीवन-यात्रा की पूर्ति में साधक भी नहीं। इस शरीर को प्राप्त करने पर यदि प्रभु कृपा से शरीर रक्षा के लिए आवश्यक धन प्राप्त हो तो मनुष्य को चाहिए कि व्यर्थ में और धन की प्राप्ति में न उलझ कर निर्भीक हृदय से प्रभु का स्तवन करे और अधिक धन जुटाने में शक्ति को व्यय करने के स्थान में प्रभु की उपासना से शक्ति की वृद्धि करना अधिक श्रेयस्कर है।

मानव-शरीर को प्राप्त करके, आवश्यक धन प्राप्त होने पर, प्रभु स्तवन ही उचित है-इसी से हमारी शक्ति बढ़ेगी, अन्यथा हम क्षीणशक्ति हो जायेंगे।

143. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्त्रा हिरण्यवत्।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम्।। साम0 1734

उपदेश : प्राणापान की साधना से बुद्धि तीव्र होती है। इन्द्रियों के दोष दूर होते हैं। प्राणापान की साधना चित्तवृत्ति निरोध में भी सहायक होती है-इससे मन निर्मल होता है। इस निर्मल मन के साथ होते हुए ये प्राणापान इन्द्रियों को बाहर विषयों में जाने से

रोकते हैं। सामान्यतः इन्द्रियों का स्वभाव बाहर जाने का है, परन्तु प्राणापन के बल से इन्हें अन्दर ही नियमित करके मनुष्य उस आत्मतत्त्व का दर्शन करता है।

144. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम्।। साम0 1736

उपदेश : प्राण–साधना करने से हमारे जीवन में निम्न परिणाम दिखेंगे–

(1) हमारी मनोवृत्ति अत्यन्त उत्तम होगी और मनुष्य सदा प्रभु का स्मरण करते हुए प्रभु के नामों व स्तोत्रों का उच्चारण करेगा।

(2) उसकी बुद्धि सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती हुई उसकी ज्ञानवृद्धि का कारण बनेगी और वह प्रकृति के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता हुआ इन पदार्थों में प्रभु की महिमा को देखेगा।

(3) उसका शरीर, बल व प्राणशक्ति से सम्पन्न होने के कारण, रोगों व शत्रुओं का शिकार न होगा। रोगों से मुकाबला करने के लिए उसके शरीर में प्राणशक्ति होगी और बाह्य शत्रुओं से भयभीत न होने के लिए वह बल–सम्पन्न होगा।

145. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर।।
साम0 1739

उपदेश : प्रभु उसकी प्रशंसा करते हैं जिसे जीवन–विकास को साधने वाले विद्वान लोग प्राप्त होते हैं। घर में इस प्रकार के विकसित जीवन वाले विद्वानों का आना आवश्यक है। इनके आते–जाते रहने से घर का वातावरण बड़ा सुन्दर बना रहता है एवं प्रशंसनीय घर वही है जहाँ गौवें हैं, घोड़े हैं, जहाँ चरित्रवान विद्वानों का आना–जाना है।

146. स मर्मृजान आयुभिरिभो राजेव सुव्रतः।
श्येनो न वंसु षीदति।। साम0 1763

उपदेश : किन मनुष्यों में सोम (वीर्य) सुरक्षित रहता है? इसका उत्तर वेद मन्त्र निम्न प्रकार देता है –

1. प्रभु की पूजा करने वालों में,
2. दूसरों की सहायता करने वालों में – लोकहित के कार्यों में रहने वालों में।
3. प्रभु का नाम जपने वालों अथवा पवित्र वाणियों का पठन करने वालों में।
4. जो सदा कार्यों में लगे रहते हैं–खाली न रहने वालों में। सदा क्रियाशीलता सोम रक्षा की बड़ी सहायक है।
5. प्रभु के खोजने वालों में या प्रकृति के तत्त्वों के ज्ञान में लगे हुओं में।
6. इन्द्रियों के विजेताओं में।
7. जो सभी से प्रेम करें, उनमें तथा
8. जो सोमरक्षा की प्रबल इच्छा वाले हैं, उनमें

147. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना।
दस्त्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम्। साम0 1744

उपदेश : प्राणों की साधना से आसुर वृत्तियाँ पत्थर पर मिट्टी के ढेले के समान टकराकर नष्ट हो जाती हैं। इन वासनाओं के नाश के द्वारा ये प्राणापान उस अविनाशी प्रभु को प्राप्त कराने वाले हैं। प्रभु प्राप्ति का साधन वासना–विनाश ही तो है। ये प्राणापान शरीर के सब रोगों का और मन के सब मलों का नाश करने वाले हैं। ये ज्योतिर्मय मार्ग वाले हैं। वस्तुतः वीर्य रक्षा के द्वारा ज्ञानाग्नि को

दीप्त करके ये प्राणापान हमारे जीवन को ज्योतिर्मय बनाते हैं, सुखी बनाते हैं।

148. द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः।
उप नो हरिभिः सुतम्।। साम0 1791

उपदेश : मनुष्य का जीवन दो प्रकार से चलता है एक तो 'इन्द्रियों को सशक्त बनाकर, दूसरे 'सशक्त इन्द्रियों को यज्ञों में प्रवृत्त करके''। ऐसा व्यक्ति ही वासनाओं का विनाश करने वालों में उत्तम होता है। सशक्त इन्द्रियों को यज्ञों में लगाये रखना ही तो पापों से बचने का उपाय है। इन्द्रियाँ निर्बल हों तो चिड़चिड़ापन, क्रोध व खीझ इत्यादि सताते रहते हैं, और सशक्त होकर यज्ञों में प्रवृत्त न हों तो कामादि की ओर झुकाव वाली हो जाती हैं। अतः दोनों ही बातें आवश्यक हैं-(1) इन्द्रियों को सशक्त बनाना और (2) सशक्त इन्द्रियों को यज्ञ में प्रवृत्त रखना। इन दोनों बातों के होने पर ही मनुष्य वासनाओं को समाप्त कर पायेगा। वासनाओं को समाप्त करके यह ज्ञानी बनता है। वासना ही तो ज्ञान पर पर्दा डाले हुई थी। आवरण के हटने पर वह ज्ञान चमकने लगता है।

149. प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहा।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां
ज्याका अधि धन्वसु।। साम0 1801

उपदेश : प्रभु ने यह शरीररूप रथ जीवन-यात्रा की पूर्त्ति के लिए हमें दिया है। यदि हम इसका ठीक प्रयोग करते हैं तो प्रभु की अर्चना कर रहे होते हैं। किसी से दी गई वस्तु का ठीक प्रयोग ही उसका आदर है। हम इस शरीर रूप रथ को शक्ति से अलंकृत करें, जिससे वह हमें आगे-और-आगे ले चलने वाला हो। शरीर

रूप रथ का सशक्त रखना और इसे न बिगड़ने देना ही प्रभु का सच्चा आदर है।

जब हम प्रभु की ही समीपता में रहते हैं तब हमारा मार्ग कभी अन्धकारमय नहीं होता।

जिस बात की प्रेरणा वेद में है, वही धर्म है। प्रभु की प्रेरणा ही हमें धर्म के मार्ग पर ले चलती है।

150. उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः।।साम0 1794

उपदेश : यदि अपने जीवन को विशेष रूप से पूरण करना चाहते हो, उसकी न्यूनताओं को दूर करना चाहते हो, यदि अपने जीवन से अन्यायाचरण को समाप्त करना चाहते हो तो प्रभु का स्तवन करो। यह प्रभु का स्तवन 'सुवृक्ति' है– उत्तम प्रकार से दोषों को दूर करने वाला है। यह जीवन के मार्ग को प्रशस्त बनाने वाला है। वे प्रभु महान विस्तार वाले हैं, उनके स्तवन से स्तोता भी विशाल हृदयता को धारण करने वाला होगा। वे प्रभु विशेष महिमा वाले हैं–स्तोता भी महिमा को प्राप्त करेगा। वे प्रभु निरतिशय ऐश्वर्य वाले हैं, स्तोता भी परमैश्वर्य में भागी बनेगा।

इन सब बातों का विचार करके, ज्ञान में विचरण व रमण करने वाले पुरुष उस प्रभु के व्रतों को कभी हिंसित नहीं करते। प्रभु ने वेद में जो आदेश दिये हैं, ये उनका पालन करते हैं। 'मन्त्रों में जैसा सुना है, वैसा ही करते हैं' यह इनका निश्चय होता है।

।। ओ३म।।

आर्यसमाज के नियम

(विश्व शान्ति के स्तम्भ)

1– सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

2–ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

3– वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4– सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

5– सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

6– संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7– सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

8– अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

9– प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10– सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

वेद और योगदर्शन के अनुसार जो मनुष्य ईश्वर को निराकार नहीं मानता, सर्वज्ञ नहीं मानता, सर्व व्यापक नहीं मानता, वेदों के अनुसार उसकी उपासना नहीं करता, उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करता है, ऐसे व्यक्ति को न तो ध्यान व उपासना में सफलता मिलती है और न ही ईश्वरीय आनन्द की प्राप्ति।

निराकार ईश्वर की प्रार्थना, उपासना व ध्यान करने की सरल विधियों के लिये पढ़ें –मदन अनेजा द्वारा सरल हिन्दी में लिखित निम्न आध्यात्मिक पुस्तकें :-

1. **योग चिन्तन, जप एवं ध्यान :-** ध्यान क्या है? इसका उद्देश्य क्या है? ध्यान किसका करें? ध्यान से लाभ। वेदानुकूल पद्धति क्या है? ध्यान विधि, ईश्वर प्रकृति, जीवात्मा का शुद्ध ज्ञान, अष्टांग योग आदि विषयों का इस पुस्तक में वर्णन है।

2. **वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि :-** सन्ध्योपासना एवं यज्ञ में प्राणायाम प्रयोग करने का महत्त्व, वैदिक यज्ञ–हवन विधि, गायत्री मन्त्र द्वारा हवन विधि, ओ३म्/गायत्री मंत्र जप विधि आदि विषयों का बोध कराती है।

3. **प्रार्थना उपासना विधि :-** प्रार्थना–उपासना का अर्थ, प्रार्थना की चार प्रभावित विधियाँ, मंत्र उच्चारण में प्राणायाम का प्रयोग आदि प्रसंग का वर्णन है।

4. **जीवन निर्माण व उपासना में ब्रह्मचर्य का महत्त्व :-** ब्रह्मचर्य, वीर्य रक्षा एवं वीर्य नाश सम्बन्धित ज्ञान अत्यन्त सरल हिन्दी भाषा में दिया गया है ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपना और अपने बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा कर सके।

5-7 – वैदिक विचार संग्रह भाग 1, 2 और 3 :- वेदाध्ययन से व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक उन्नति होती है, अन्धकार का नाश होता है। वैदिक ज्ञान व वैदिक धर्म से परिचय, ग्रहस्थ जीवन से सम्बन्धित सभी विषयों पर 600 वैदिक विचार, ओ३म् जप, गायत्री जप, ध्यान व सरल वैदिक मन्त्रों द्वारा ईश्वर भक्ति/उपासना आदि सरल भाषा में प्रस्तुत हैं।

8. **वैदिक प्रार्थनाएँ एवं धार्मिक कर्म :-** सभी मांगलिक सुअवसरों पर प्रयोग होने वाले वैदिक मंत्र और वैदिक प्रार्थनाओं का वर्णन है। मंत्र उच्चारण में सहायता और उनका सरल भावार्थ हिन्दी और अंग्रेजी में दिया गया है। आप इस पुस्तक की सहायता से सभी धार्मिक कर्म–यज्ञ आदि स्वयं घर पर कर सकते हैं।

9. **आध्यात्मिक ज्ञान–सरल परिचय :** इसमें वेद, उपनिषद, दर्शन आदि ग्रन्थों के आधार पर ईश्वर, जीव, प्रकृति, सृष्टि, धर्म, योग, ध्यान, उपासना आदि विषयों की जानकारी सरल हिन्दी भाषा में, प्रश्न–उत्तर के रूप में, दी गई है जिससे साधकों की अधिकतर भ्रान्तियाँ समाप्त हो सकें।

10-13. आध्यात्मिक उपदेश – इन चार पुस्तकों में अविद्या और अज्ञान को दूर करने और भक्ति भावना को हृदय में दृढ़ करने हेतु 650 आध्यात्मिक उपदेशों का वर्णन है। इन उपदेशों का संकलन वेदों के प्रख्यात दार्शनिक पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार द्वारा लिखित ''वेद भाष्यम्'' से समाज हित में किया गया है।

उपरोक्त सभी पुस्तकें निम्नलिखित लिंक पर नि:शुल्क उपलब्ध हैं। पढ़कर लाभ लें। – https://drive.google.com/drive/folders/1HkVcnkoqoUY-2DWxn_d-Y3xTEiCibzxol?usp=sharing

मदन अनेजा–मो0 – 9873029000 (Whatsapp only please)

लेखक परिचय

श्री मदन लाल अनेजा का जन्म 10 मार्च 1952 को जिला रामपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ। सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया में 22 वर्ष सेवा करने के बाद संयुक्त रजिस्ट्रार के पद से वी0आर0एस0 के अंतर्गत सेवानिवृत्त हुये। 1999 में पुनः राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में संयुक्त रजिस्ट्रार (विधि) के पद पर 12 वर्ष 6 मास एवं सलाहकार (विधि) के पद पर 2 वर्ष 6 मास तक आयोग की सेवा की।
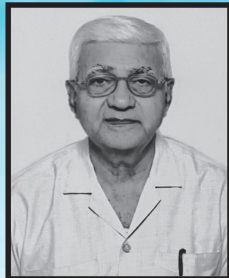
प्रभु के आशीर्वाद व प्रेरणा से योग व ध्यान में आपकी विशेष रुचि है।

आपके द्वारा लिखित सभी पुस्तकें (1) योग चिन्तन-जप एवं ध्यान, (2) वैदिक सन्ध्या व यज्ञ विधि, (3) जीवन-निर्माण एवं उपासना में ब्रह्मचर्य का महत्त्व,(4) प्रार्थना उपासना विधि एवं (5-7) वैदिक विचार संग्रह भाग-1, भाग-2, भाग-3, (8)वैदिक प्रार्थनाएँ एवं धार्मिक कर्म और (9) आध्यात्मिक ज्ञान (सरल परिचय) पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय हो रही हैं। आपकी पुस्तकों में समाज में फैली अनेक भ्रान्तियों और ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना व ध्यान विधि पर सरल भाषा में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। उपरोक्त पुस्तकों को (link given at back page) से निःशुल्क डाउनलोड करके दूर-दूर तक भारत व विदेशों में साधक इनका स्वाध्याय कर रहे हैं और अपने जीवन को वेदानुसार चलाने में अग्रसर हो रहे हैं।

आशा है सभी साधकों को वैदिक संस्कृति, वेद ज्ञान और ईश्वर स्तुति-प्रार्थना, उपासना व ध्यान व प्राण-साधना की विधियों का लाभ इन पुस्तकों में दिये गये वैदिक विचारों के माध्यम से और अधिक प्राप्त हो सकेगा, ताकि आप जीवन की हर कठिन राह में सफलता के अधिकारी बन सकें।

सी-79, तक्षशिला अपार्टमेन्ट,
प्लाट नं0-57, आई.पी. एक्सटेंशन,
दिल्ली-110092

विक्रान्त अनेजा (मंत्री)
मानव संस्कार फाउन्डेशन